Chapter. 2

द्वितीय अध्याय

पृष्ठभूमि, समकालीन परिवेश, आधुनिकता-बोध और साठोत्तरी कविता

विश्व इतिहास के राजनीतिक रंगमंच पर भारतवर्ष की स्वतंत्रता एक महान् उपलब्धि है। एक बहुत लम्बे अन्तराल के पश्चात् भारतवर्ष के जन साधारण ने स्वतंत्रता प्राप्त कर मुक्ति की सांस ली। १५ अगस्त, १९४७ को देश स्वतंत्र हो गया। इसी के फलस्वरूप चारों ओर उत्साह और भावी खुशहाली की तस्वीर सबके मानस पटल पर अंकित हो गई। "किसी भी देश के लिये स्वतंत्रता (प्राप्ति) महज एक घटना नहीं होती, यह उस देश के लोगों की अदम्य मुक्ति कामना, संघर्ष और सामूहिक चेतना का प्रतिफल होती है। स्वतंत्रता के पीछे एक लम्बे संघर्ष का इतिहास रहता है और यह संघर्ष उस देश की मानसिकता को एक नया अर्थ और आयाम देता है।"[1] हमारे देश के लिये स्वतंत्रता प्राप्ति के दो अर्थ थे। एक ओर देश अंग्रेजों के शिकंजे से छूट रहा था दूसरे यहां पर 'राजतंत्र' के स्थान पर 'प्रजातंत्र' की स्थापना होनी थी। इस महान् उपलब्धि का स्वागत देश की जनता को अत्यन्त उल्लास और उत्साह के साथ करना चाहिए था, परन्तु 'स्वतंत्रता' को दो कारणों से हमारे द्वारा सहज रूप में ग्रहण नहीं किया जासका। एक तो दूसरे महायुद्ध के बाद हमारे लिये यह स्वाधीनता की उपलब्धि बहुत कुछ आकस्मिक रही है, देश की जनता को इस पर विश्वास न था। इसके अतिरिक्त देश विभाजन की स्थिति से सम्बद्ध रक्तपात, उत्पीड़न, अत्याचार, अमानुषिक व्यवहार ने हमारी सारी संवेदनाओं को कुंठित

---

(१) आधुनिकता और समकालीन रचना संदर्भ - डॉ० नरेन्द्रमोहन - पृष्ठ १७७

कर दिया था ।"[1]

पृष्ठभूमि ::-

मारत वर्ष की स्वतंत्रता के पच्चीस वर्षों के काल खण्ड को हम दो भागों में बांट सकते हैं--- १ मोहग्रस्तता का काल २- मोहभंग का काल । मोहग्रस्तता का काल स्वतंत्रता के प्रारम्भ का वह समय था जिसे नेहरू युग कहा जा सकता है । इस काल में भारतीय जनमानस को उसकी खुशहाली के लिए अनेक आश्वासन दिए गए तथा उनके पूर्ण होने का भ्रम प्रत्येक नागरिक में बना रहा । इस काल की अवधि सन् ६० तक अथवा चीनी आक्रमण तक मानी जा सकती है । स्वतंत्र भारत के लिए एक स्वप्न संजोया था यहां के कर्णधारों ने भी जनता को 'रामराज्य' का आश्वासन दिया । इसी आशा और विश्वास के साथ में प्रथम आम चुनाव में जनता ने कांग्रेस को भारी बहुमत से विजयी बनाया । स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय संविधान का निर्माण हुआ जिसमें देश के नागरिकों को उनके सर्वांगीण विकास के लिए अनेक मौलिक अधिकार और नीति निर्देशक तत्वों का अधिकार दिया गया । समाज से अनेक सामाजिक बुराइयों को हटाकर जहां सामाजिक व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन की बात को दोहराया गया वहीं आर्थिक मोर्चे पर आत्म निर्भर होने की बात भी कही गई । इस समस्या के निराकरण के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का आरंभ हुआ । योजनाओं के प्रारूप से लगता था कि रोटी कपड़ा और मकान की समस्या शनै: शनै: सुलझ जायेगी हम अपने ही खेतों का अनाज खायेंगे तथा अपने ही पैरों पर खड़े होने का प्रयास करेंगे । भारत की विदेश नीति में पंचशील, सह-अस्तित्व, अहिंसा और 'वसुधैव

---

(१) साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य डॉ० रघुवंश - पृष्ठ- १३४

कुटुम्बकम् को आधार बनाया गया। एक भाषा और एक झंडा का नारा भी लगाया गया। कुल मिलाकर भारत को राजनैतिक स्वतंत्रता तो मिल गई थी परन्तु उसकी सामाजिक आर्थिक स्वतंत्रता का उत्तरदायित्व बाद की शासकीय व्यवस्था पर था और देश में प्रत्येक नागरिक को न्याय तथा अधिकार दिलाने के लिए ही यहां प्रजातांत्रिक प्रणाली को अपनाया गया। स्वतंत्र भारत का नागरिक आयोग, संविधान संशोधन, आम चुनाव के समय दोहराये गए वायदे, पंचवर्षीय योजनाओं के प्रारूप राजनेताओं के आश्वासन हु भरे भाषण लगातार डेढ़ दशक तक सुनता रहा। जब उसे अपनी आशाएं फलीभूत होती दिखाई नहीं दीं, तो उसमें आशा और विश्वास के स्थान पर निराशा और कुण्ठा पनपने लगी। उसमें अपने राजनेताओं तथा अपनी व्यवस्था के प्रति विद्रोह जाग उठा। देश की खुशहाली, आत्म-निर्भरता तथा प्रगति का पर्दाफाश उस समय हुआ जब १९६२ में चीन ने भारत पर आक्रमण किया।

<u>समकालीन परिवेश::-</u>

जन-साधारण ने स्वतंत्रता के मूल में बहुत से स्वप्न और सिद्धान्त संजो रखे थे जिनके फलस्वरूप उसे नये वातावरण में नये सूर्य की तलाश थी जो बिना किसी भेदभाव के सबको आलोकित कर सके। क्यों कि भारतीय स्वतंत्रता का अर्थ है--- सामन्तवाद, साम्राज्यवाद, आर्थिक और सामाजिक शोषण से मुक्त भारतीय मानव की प्रतिमा स्थापित करना[१] इस स्थापना के लिये आवश्यक था कि हम झंडा बदलने के साथ-साथ व्यवस्था में भी आमूल-चूल परिवर्तन करते। परन्तु

---

(१) द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - पृष्ठ- ६

ऐसा नहीं हुआ। वास्तव में हमारे बरसों के आदर्शपूर्ण जन आन्दोलन की परिणति ऐसे ढुलमुल समझौते में हुई जिससे हमें नाममात्र की ही मुक्ति मिल सकी। जिस व्यवस्था के विरुद्ध हम संघर्षरत थे, हमें उसी व्यवस्था को तिनके की तरह ग्रहण करना पड़ा।[1] इस अधकचरी स्वतंत्रता का परिणाम यह हुआ कि राजनीतिक सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में हमारी प्रगति उल्लेखनीय नहीं कही जा सकती। एक स्वतंत्र राष्ट्र से जो आशायें होती हैं वे आज तक पूरी नहीं हो पाई। इसके लिये कांग्रेस सरकार, कर्मचारी तथा जनता सभी न्यूनाधिक रूप से उत्तरदायी हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत की राष्ट्रीय सरकार को विश्व के सामने यह सिद्ध करना था कि वह राजदण्ड संभालने तथा अपनी सीमाओं की रक्षा करने में सर्वथा समर्थ है। जहां सरकारी अफसरों को देश के प्रति अपनी निष्ठा दिखाने की चुनौती मिली थी, वहीं जनसाधारण को भूलना था कि वह मात्र शासित प्रजा नहीं है और उसे नयी राजनीतिक संस्कृति के सबक सीखने थे।[2] इसी का प्रभाव है कि हमारी कतिपय उपलब्धियों के साथ असफलताओं का विशाल तांता स्वतंत्रता के दरवाजे पर आसन जमाये बैठा रहा। सन साठ के पश्चात हमारी आशा और आकांक्षाओं का बिखराव हमारी असफलताओं की देन है।

१- राजनीतिक परिस्थितियाँ:-

भारतीय संविधान के द्वारा भारत को एक ऐसा जनतंत्र माना गया जिसमें सभी नागरिकों को समान रूप से मौलिक अधिकार प्राप्त

---

(१) आलोचना (त्रैमासिक), जुलाई-सितम्बर ७२, 'समकालीन हिन्दी कविता में आजादी की तस्वीर' - भारतभूषण अग्रवाल - पृष्ठ - ३।

(२) बिन्दु (त्रैमासिक) वर्ष ६ संयुक्तांक विशेषांक (३-४) 'राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया, समितियां और गवाह' - डॉ० योगेश अटल पृ० ५३१

करने की व्यवस्था है। इस संविधान में प्रत्येक व्यक्ति को विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता दी गयी है। कानून के समक्ष सभी समान हैं। प्रत्येक व्यक्ति को संस्था तथा संघ बनाने का अधिकार है। धर्म निरपेक्षता, बालिग मताधिकार, भेदभाव से मुक्ति आदि इस संविधान की कतिपय विशेषताएँ हैं। समाज के कमजोर वर्गों मुख्यत: स्त्रियों और अछूतों के लिए विशेष ध्यान रखा गया है। उन्हें भी अन्य नागरिकों की भाँति अधिकार दिये गये हैं। जातिगत, धर्मगत एवं रंगगत भेदभाव का अभाव इस संविधान में है। संक्षेप में सिद्धान्तत: हमारा राज्य अब जनता द्वारा जनता के लिए और जनता का राज्य है और कल्याण राज्य स्थापित करना उसका उद्देश्य है। जिला खण्ड और ग्राम स्तर पर पंचायती राज्य की स्थापना के बाद छोटे से गांव से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक प्रजातांत्रिक राज्य की स्थापना से प्रत्येक व्यक्ति को अपना अपना व्यक्तित्व और साथ ही राष्ट्रीय व्यक्तित्व विकसित करने का अवसर प्रदान किया गया है। खेद है कि दोनों व्यक्तित्वों में अभी समन्वय उपस्थित नहीं हो सका।"[१]

भारतीय संविधान ने सामन्ती और पूंजीवादी मूल्यों को दुर्बल बनाकर नवीन लोकतंत्रीय परम्पराओं के श्रीगणेश का मार्ग प्रशस्त किया था। देश में आतंक, भय और शोषण को समाप्त करके निर्भयता सौहार्द और बन्धुत्व की भावना को विकसित करने का श्रेय बहुत कुछ भारतीय संविधान को प्राप्त है। विगत पच्चीस वर्षों में भारतीय संविधान और लोकतंत्रीय शासन प्रणाली की सार्थकता भी प्रमाणित हो चुकी है। इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय संविधान के निर्देशक सिद्धान्त जनवादी हैं लेकिन इसकी धाराओं और विधियों में इन मूल सिद्धान्तों की स्पष्ट अवहेलना मिलती है। मूल अधिकारों के अन्तर्गत संपत्ति को अधिकार को मान्यता देकर वस्तुत: यथास्थितिवाद की वकालत की गई है। मूल अधिकारों में

---

(१) द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास-डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय- पृष्ठ- १७

प्रत्येक व्यक्ति को कार्य पाने, जीने आदि के अधिकार शामिल नहीं है अर्थात् मूल अधिकारों की रचना प्रतियोगी तथा संग्रहशील (एक्वीजीटिव) पाश्चात्य समाजों से प्रेरित होकर की गई है। इसलिए व्यक्तियों को कार्य, शिक्षा, स्वास्थ्य, निवास तथा वस्त्र प्राप्त करने के मूल अधिकार नहीं दिये गये। इन्हें साधनों और संपत्ति के साथ जोड़ दिया गया। शिक्षा - सदन स्वास्थ्य केन्द्र आदि सबके लिए खुले हैं लेकिन जो समर्थ हैं वे ही उच्च शिक्षा प्राप्त कर पाते हैं।[1] संविधान संशोधनों के नाम पर उपलब्धियों के लिए जितना शोर-शराबा किया गया व्यावहारिक रूप में उसका प्रभाव उतना नहीं हो पाया।

सातवें दशक के आरंभ के साथ देश में एक ऐतिहासिक मोह भंग का जन्म होता है। यह मोह भंग एक प्रकार का स्वप्न-भंग था। स्वतंत्रता के पश्चात् जनसाधारण में भविष्य के जो सुख-स्वप्न देखे थे, आर्थिक और सामाजिक स्तर पर उन्नति और खुशहाली की जो कल्पनाएँ की थीं, जब उनके साकार होने में कोई लक्षण दिखाई नहीं दिये तब जनता में असंतोष उत्पन्न होना स्वाभाविक था। इस आक्रोश के फलस्वरूप विरोध की राजनीति उभरकर सामने आई। "लेकिन विरोध की इस राजनीति के सामने कोई वैज्ञानिक, सामाजिक, राजनैतिक दर्शन, तर्क संगत, दृष्टिकोण तथा भविष्य के लिये सामाजिक व्यवस्था की कोई स्पष्ट रूपरेखा नहीं थी। अक्सर यह विरोध की राजनीति निहित स्वार्थों के षड्यंत्र का शिकार होती रहती थी।"[2] यह देश का दुर्भाग्य और विरोधी दल के लचरपन का ही प्रमाण है कि आज तक सत्तारूढ़ दल के मुकाबले कोई राजनैतिक विकल्प हम

---

(१) हिन्दी वाङ्मय: बीसवीं शती (सं० डॉ० नगेन्द्र) डॉ० विश्वम्भर नाथ-उपाध्याय - पृष्ठ-८०

(२) समकालीन हिन्दी साहित्य लेख - सव्यसाची (सं० वेदप्रकाश अमिताभ तथा अन्य) - पृष्ठ- ३८ ।

नहीं दे पाये। सन् ६७ के आम चुनाव के परिणामों ने देश की दिशाहीनता, खीफ और आक्रोश बोध का परिचय दिया। देश के सात प्रान्तों में कांग्रेस की पराजय के बाद संविद सरकारों का गठन हुआ तथा उनकी विफलताओं ने उनके भविष्य के प्रति प्रश्न चिन्ह लगा दिया। इस समय मनुष्य दिग्भ्रान्त था 'पूरब जांय कि पश्चिम वाम जांय कि दक्षिण, यह निर्णय नहीं हो पा रहा है। दक्षिण पन्थ उतना ही मजबूत लगता है जितना वाम - पन्थ, और निर्दलियों की विशाल संख्या इस बात को और सही बताती है कि हिन्दुस्तान का मन संशयात्मा 'टू बी और नाट टू बी' की अवस्था में है'।[1] निराश जनता को इन्दिरागांधी के रूप में आशा की किरण दिखाई दी। कांग्रेस का विभाजन हुआ। 'गरीबी' 'हटाओ' के नारे का प्रभाव जनमानस पर हुआ। ६६ में बैंकों का राष्ट्रीयकरण तथा ७० में नरेशों के विशेषाधिकार की समाप्ति के निर्णय से जनता की आशा को कुछ बल मिला है।

आजादी के मोहभंग की एक जबर्दस्त घटना सन् ६२ के चीनी आक्रमण के बाद सन् ६५ और ७१ के पाकिस्तानी युद्ध, नेहरू, शास्त्री और लोहिया जैसे राजनेताओं की मृत्यु आदि ऐसी कितनी ही घटनाएँ घटी हैं जो अपने जातीय इतिहास में किसी न किसी विशेष तारीख के रूप में दर्ज हैं। वामपंथी दलों का एक खूंख्वार आक्रामक शक्ति के रूप में उदय और फिर तुरन्त बाद बिखराव, नक्सलवाड़ी और श्रीकाकुलम का लोम हर्षक विस्फोट, ७१ के आम चुनाव में इन्दिरा लहर का करिश्मा आदि सभी प्रमुख घटनाएं हैं जो सातवें दशक की उथल पुथल का चित्र हमारे

---

(१) ज्ञानोदय जून १९६७ कुबेरनाथ राय - पृष्ठ - २१

सामने प्रस्तुत करती हैं। गुजरात और बिहार आन्दोलन की पृष्ठभूमि में यही परिस्थितियाँ उपस्थित थीं।

संसद और विधान सभा जो पवित्र स्थान समझे जाते थे वहां जूते और चप्पलों का रिहर्सल भी किया जाने लगा। गाली गलौज तथा दर्शक दीर्घाओं से पर्चेबाजी केवल विरोध के लिए ही नहीं कही जा सकती उसमें कुछ देश की राजनीतिक अदूरदर्शिता का भी हाथ है। पंचशील, भाई-भाई का नारा तथा अहिंसा समय की गति के साथ नहीं चल सके।

एक दशक में तीन - तीन युद्धों ने भारत के राष्ट्रीय जीवन को बहुत प्रभावित किया है। साम्यवादी दल का विभाजन हिन्दू मुस्लिम सम्बन्धों में तनाव, बढ़ती हुई मंहगाई तथा शिथिल अर्थ व्यवस्था आदि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में इन युद्धों की ही देन है। "आज इन्हीं युद्धों का प्रभाव है कि गांधी की अहिंसा के सम्मोहन में फंसा यह देश आज हिंसा को अन्तिम रूप से त्याज्य नहीं समझता। यह वैचारिक धरातल पर एक क्रान्ति ही है, जो युद्ध के बिना घटित होने के लिये निश्चित ही अनेक वर्षों का दौर मांगती है"[१]

२- सामाजिक परिस्थितियाँ:-

भारत की स्वतंत्रता के पश्चात उसके सामाजिक संगठन एवं विचारधाराओं में परिवर्तन का दौर प्रारंभ हुआ। सामाजिक विचारधाराओं, रीतिरिवाजों में परिवर्तन स्पष्ट हुए जब कि सामाजिक व्यवस्था की गति प्राय: उत्साहजनक नहीं रही। सामाजिक व्यवस्था समाज की आर्थिक प्रणाली पर आधारित होती है अत: जब तक आर्थिक प्रणाली में बदलाव

(१) संचेतना (त्रैमासिक) सितम्बर-६६ हिन्दी कहानियां नवलेखन की सहजता - -- नरेन्द्र कोहली - पृष्ठ - ३५-३६

की स्थिति न आयेगी तब तक सामाजिक व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन असंभव है। परतंत्रता के लम्बे समय से सामाजिक व्यवस्था जिस दौर से गुजर रही थी उसमें कुछ विघटन के बावजूद ज्यों की त्यों आज भी देख सकते हैं। 'आजादी के बाद भारतीय संविधान में अपने भविष्य की जो तस्वीर देखी, वह परंपरित, पितृसत्तात्मक और कृषक समाज से भिन्न आधुनिक बौद्धिक, औद्योगिक, तंत्रात्मक और समाजवादी जनतंत्रवादी समाज की तस्वीर है। यह समाज एक ओर सामुदायिक जीवन की आन्तरिक प्रेरणाओं का समाज होगा और दूसरी ओर व्यक्ति को पूरी तरह स्वतंत्रता देने वाला। ------ वास्तविकता यह है कि संविधान द्वारा प्रचारित यह समाज भारत में स्थापित नहीं हुआ।'[१] इस काल्पनिक समाज का स्थान लिया एक ऐसे अजीब मिश्रित समाज ने जिसमें एक ओर पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्था की समस्त बुराइयाँ हैं तो दूसरी ओर इस पर समाजवादी पैबंद भी लगे हैं। देश के दिशा-निर्देशकों ने सामाजिक संदर्भों की उपेक्षा तो की ही तथा साथ ही राजनैतिक दांव-पेचों से जनता के सामाजिक जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तनों की विचारधाराओं को भी पंगु बना दिया है।

सातवें दशक में सामाजिक परिस्थितियों में इतना परिवर्तन आया कि इससे पहले शायद इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। यह परिवर्तन अनेक दौरों से गुजरता हुआ आया यथा---नारी स्वातंत्र्य, युवा पीढ़ी का आक्रोश, मध्यम वर्ग की भूमिका, जाति व्यवस्था, परिवार में विघटन एवं सांस्कृतिक अवमूल्यन आदि।

---

(१) 'कल्पना' अगस्त - ६७ - [illegible] लेख परम्परा और आधुनिकता - सुरेन्द्र चौधरी - पृष्ठ-३२ ।

स्वतंत्रता के पश्चात् स्त्रियों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के अनेक उपाय किये गये। 'हिन्दू स्त्रियों कोडबिल' के द्वारा स्त्रियों और पुरुषों के अधिकारों में समानता का प्रावधान किया गया है। तलाक को कानूनन वैध घोषित कर नारी स्वातंत्र्य को बल मिला। पैतृक संपत्ति में भी नारी को अधिकार मिला है। अब नारी पुरुष की तरह किसी को भी गोद ले सकती है। बहुपत्नीत्व प्रथा पर रोक लग जाने से नारी को सम्मान के साथ-साथ सुरक्षा भी प्रदान हुई है। बाल-विवाह तथा दहेज प्रथा जैसी कुप्रथाओं पर भी सरकारी तथा गैर सरकारी नियंत्रण हो जाने से स्त्रियों की दशा में सुधार हुआ है। इन समस्त बातों का परिणाम यह हुआ है कि नारी सम्बन्धी पुरानी मान्यताएँ और धारणाएँ बदल गईं तथा उनका स्थान नये मूल्यों ने ले लिया। अब नारी पर पुरुष के स्वामित्व का मूल्य विघटन की ओर है। अब शिक्षित भारतीय नारी पुरुष को 'देवता' न मानकर जीवन साथी अथवा 'मित्र' मानने में अधिक सचेष्ट है। स्त्रियों में शिक्षा के कारण उनके कार्य क्षेत्र में अधिक परिवर्तन हुआ है। आज प्रत्येक विभाग में स्त्रियों को नौकरी करते देखा जा सकता है। शिक्षा का ही प्रभाव है कि पर्दा जैसी कुप्रथा को भी स्त्री ने अस्वीकार कर दिया। परन्तु देश की नारियों का एक बहुत बड़ा वर्ग ऐसा है जो आज भी अपनी अशिक्षा, पारिवारिक तथा सामाजिक दबाव, संस्कारों के द्वारा पुराने मूल्यों - सतीत्व, पुरुष के एकाधिकार तथा आर्थिक परतंत्रता आदि को अपनी नियति मान बैठा है। आज नारी के लिये प्रेम विवाह अन्तर्जातीय विवाह के मार्ग खुले हुए हैं। 'गर्भ निरोधक कानून' के अनुसार अब कुमारियाँ भी मातृत्व ग्रहण कर सकती हैं। आजकल नारियों में स्वतंत्र जीवन व्यतीत करने के लिए विवाह न करने की प्रवृत्ति भी देखी जा सकती है।

नारी को इतनी सामाजिक सुरक्षा प्रदान की गई,

परन्तु आज भी एक आम भारतीय का विचार वही पुरातनपंथी है जिसमें नारी की सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता नहीं है। यह प्रवृत्ति गांवों में अधिक पाई जाती है। नगरों की स्थिति में कुछ गतिशीलता के लक्षण देखे जा सकते हैं। फिर भी यह निश्चित है कि स्वतंत्रता के पश्चात् आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में स्वतंत्रता और समानता के मूल्य विकसित होने से नारियों की स्थिति में बदलाव आया है।

सन् ६० के पश्चात् के सामाजिक परिवेश का अध्याय युवकों की चर्चा किये बिना अधूरा ही रह जाता है। युवकों की जिस पीढ़ी ने स्वतंत्रता के पश्चात् जन्म लिया और जो स्वतंत्रता के बाद ऐसे सामाजिक पर्यावरण में वयस्क हुई है जिसमें एक ओर स्वार्थ, भ्रष्टाचार और अनीति का बोल बाला है, दूसरी ओर वैचारिक और सैद्धान्तिक अराजकता पनपती गयी है, उसने पुरातन मूल्यों के प्रति अपना तीव्र आक्रोश व्यक्त किया है। स्टीवेन जे० केलमैन के शब्दों में 'आज के नवयुवक का सूत्रवाक्य है : 'आई एम यंग एण्ड आई लाइक टू लिव माई एज' और आज के विज्ञान और टेक्नोलोजी के युग में वह एक ऐसी दुनियाँ बनाने में संलग्न है जिससे पुरानी पीढ़ी अपरिचित है। वह ऐसी दुनियाँ का सपना देख रहा है, जो मूढ़ाग्रहों से मुक्त होगी, जहां निष्क्रिय परम्पराओं का उन्मूलन कर दिया गया होगा, जहां भूख पर प्रहार किये जायेंगे, जहां उन्मुक्त सेक्स (अश्लील नहीं) होगा। जहां निरक्षरता, बीमारी और भेदभाव का लेशमात्र भी न होगा----- जहां प्रत्येक व्यक्ति अपने उत्तरदायित्वों के प्रति जागरूक होगा, उसका व्यक्तित्व शुद्ध गरिमापूर्ण होगा और जहां विज्ञान सम्मत नैतिक वातावरण प्रतिफलित होगा।'[१]

---

(१) द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास- पृ० ३६-४० से उद्धृत।

युवकों का यह आक्रोश देश के गलत और गलित राजनीतिक आर्थिक और सामाजिक संदर्भों की देन है। उचित नेतृत्व और सही मार्ग दर्शन के अभाव में यह आक्रोश प्राय: गलत रास्तों पर भटक जाता है। क्यों कि 'चारित्रिक पवित्रता, त्याग, सेवा, आस्था, प्रेम, विश्वास, आदर्श, धर्म आदि शब्द आज अपना मूल्य खो चुके हैं। नई पीढ़ी को इनमें विश्वास नहीं रह गया है क्यों कि स्वयं शब्दों को सार्थक बनाने वाले ही आज उसका मखौल उड़ा रहे हैं। दुहरी रीति नीति और जीवन में जागरूक पीढ़ी को अधिक दिनों तक भरमाया नहीं जा सकता।'[1] लम्बे बाल, चरस, एल० एस० डी०, यौन मुक्तता से जुड़ी युवा पीढ़ी की दिशाहीनता कभी-कभी इतना विकृत रूप धारण करती है कि केवल सिनेमा घरों पर धरना देकर टिकट सस्ता कराने को ही वह जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य समझ बैठती है। 'सड़कों, चौराहों, बसों पर लड़ने - झगड़ने का ही मूल्य स्वतंत्रता के बाद के युवकों में विकसित हो पाया।'[2] जिस युवा शक्ति का उपयोग राष्ट्र निर्माण में होना चाहिए था, वह अग्रजों की उपेक्षा से असंतुष्ट होकर तोड़-फोड़ के कार्यों में लगी हुई है। शिक्षित युवकों की बेकारी भी युवा असंतोष का एक कारण है। विभिन्न राजनीतिक दलों ने भी अपने दलगत स्वार्थों के लिये इस्तेमाल करके उनमें पारस्परिक वैमनस्य और संघर्ष को जन्म दिया है।

युवा पीढ़ी की चेतनाशीलता की शुरुआत पारिवारिक दंभ सामाजिक खोखलेपन और राजनीतिक विसंगतियों की पहचान से होती है। परिवेश की सही पहचान उसके विद्रोह की भूमिका बनती है। 'नयी पीढ़ी की चेतना का उदय व उसके निर्माण की सीढ़ियां ऐसी जिंदगी

- -

(१) आधुनिक काव्य: संदर्भ और प्रवृत्ति -- डॉ० गंगाप्रसाद गुप्त - पृष्ठ - ४

(२) कल्पना मार्च - अप्रैल, १९६७ - लक्ष्मीकान्त वर्मा - पृष्ठ - ३६

में शरीक हैं, जिसमें निरुद्देश्य, नुकसानदेह हुल्लड़बाजी बेहद जरूरी लगी है। नियंत्रण, सहिष्णुता, सहयोग, कर्तव्यनिष्ठा और भावों की पूंजी में मंदी आई है। दया, क्षमा सहानुभूति के मूल्यों में तेज गिरावट आई है और एक नृशंस अपराधवृत्ति के अहसास की मजबूरी ने न्याय बुद्धि को मृत बना दिया है। सारे संदर्भ उलट गये हैं।"[१]
ऐसी अराजक स्थिति में आवश्यक है कि युवा पीढ़ी की समस्याओं को गंभीरता से लिया जाय और युवा शक्ति का रचनात्मक उपयोग किया जाय।

भारत में संयुक्त परिवार भारत की भूमि प्रधान आर्थिक व्यवस्था की देन है। अधिक संख्या वाला परिवार खेती पर श्रम विभाजन का अधिक लाभ उठा सकता है, इस दृष्टि से एक परिवार के सदस्य साथ ही साथ रहना पसन्द करते हैं। किन्तु औद्योगीकरण, जनसंख्या में वृद्धि, नगरीकरण, यातायात की सुविधा तथा नारी शिक्षा के प्रसार से संयुक्त परिवार को गंभीर चुनौतियां मिली हैं। और उनका विघटन प्रारंभ हो गया है। हालांकि अभी भारतवर्ष में पाश्चात्य ढंग के आणविक परिवार, जो पिछली पीढ़ी से सर्वथा असंबद्ध होते हैं, लोकप्रिय नहीं हैं फिर भी यह निश्चित है कि संयुक्त परिवार आधुनिक आर्थिक व्यवस्था में टिक नहीं पायेंगे। आधुनिक परिवार की अवधारणा अब केवल पति पत्नी तथा नाबालिग संतानों तक सीमित रह गयी है।" संयुक्त परिवारों में प्रत्येक व्यक्ति अधिकतम विकास नहीं कर सकता, न प्रत्येक व्यक्ति अधिकतम स्वतंत्रता का भोग कर सकता है। परिवार मर्यादा (सामर्थ्य) पर चलते हैं और अपनी संभावनाओं के प्रति जागरूक

- -

(१) समकालीन कहानी दिशा दृष्टि (सं० धनंजय) लेख हिन्दी साहित्य के पिछले बीस वर्ष -२ हृषीकेश - पृष्ठ-४१।

व्यक्ति केवल मर्यादा के लिये अपना जीवन एक घेरे में बन्द नहीं कर सकता।'[1] अतः समाज में व्यक्तिवादी प्रवृत्ति विकसित हुई है जिससे तालमेल न बिठा सकने के कारण संयुक्त परिवारों का विघटन हो रहा है। यह विघटन केवल नगरों तक ही सीमित नहीं है, गांवों में भी सीमित परिवारों की संख्या अच्छी खासी है। संयुक्त परिवारों के विघटन से सम्बन्धों में तनाव और परिवर्तन का स्वर मुखर हुआ है और सम्बन्धों की टूटन ने जीवन-मूल्यों के संक्रमण में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। परम्परागत पारिवारिक संदर्भों में बदलाव के परिणामस्वरूप मूल्यों में परिवर्तन स्वाभाविक है।'[2]

जिस श्रमविभाजन के आधार पर जाति व्यवस्था का गठन हुआ था, स्वतंत्रता के बाद नवीन औद्योगिक आर्थिक प्रणाली के विकसित होने तथा नये-नये पेशों के जन्म लेने के साथ वह आधार खंडित हो गया। स्वतंत्रता के बाद यह देखने में आया कि उपजातियों के बंधन तो समाप्त होने लगे परन्तु बड़ी जातियाँ संगठित होने लगीं। चुनाव की राजनीति ने जातिवाद को बढ़ावा दिया। आज स्थिति यह है कि छुआछूत और खानपान संबंधी नियम शिथिल हो चुके हैं परन्तु जातिवाद का विष हमारी सामाजिक व्यवस्था की नसों में फैलता जा रहा है। अस्पृश्यता को लेकर निम्न वर्ग को जिस अन्याय और यातना से गुजरना पड़ता था, ५५ के अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम के द्वारा उस पर रोक लगा दी गयी है। अनुसूचित जातियों एवं पिछड़े वर्गों को शिक्षा, नौकरी आदि में विशेष

- -

(१) हिन्दी वाङ्मय: बीसवीं शती (सं० डॉ० नगेन्द्र) डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय - पृष्ठ- ६१

(२) समकालीन हिन्दी साहित्य (संपादित) डॉ० हेमेन्द्र पानेरी पृ० १०१

सुविधाएँ प्राप्त हैं। अनेक सामाजिक संस्थाओं ने हरिजनों तथा अन्य कमजोर वर्गों के प्रति सवर्णों के विचारों और धारणाओं को बदलने के प्रयास किये हैं। किन्तु समस्त सरकारी और गैर सरकारी प्रयत्नों के बावजूद जाति व्यवस्था टूटी नहीं है। आज शिक्षित मध्यम वर्ग जाति व्यवस्था को विघटित होने देने के पक्ष में नहीं है। जिस मध्यवर्ग ने कभी जाति व्यवस्था को तोड़ने में पहल की थी, आज वही अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिये उसका आश्रय ले रहा है। युवा पीढ़ी में किसी भी प्रकार के जातिवाद की अस्वीकृति मिलती है। जाति व्यवस्था के आंशिक विघटन के परिणाम भी शुभ हैं। शोषण, उत्पीड़न, संघर्ष, कुल-गौरव और असमानता आदि रूढ़ धारणाओं के स्थान पर बंधुत्व, समानता, एकता आदि मूल्यों की स्थापना की संभावनाएँ बढ़ी हैं।

स्वतंत्रता के बाद के सामाजिक परिवर्तनों में मध्यवर्ग की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है। परम्परा और आधुनिकता के द्वन्द्व और सामंजस्य को व्यापक और स्पष्ट रूप में मध्यवर्गीय जीवन के परिप्रेक्ष्य में देखा और समझा जा सकता है। किन्तु यह एक कटु सत्य है कि स्वतंत्रता के बाद राष्ट्र निर्माण में मध्यवर्ग का जितना योगदान अपेक्षित था उतना नहीं मिला। या यों कहें कि उनका सहयोग लिया ही नहीं गया। ये दोनों ही स्थितियाँ उत्साहजनक नहीं हैं। समाज के उच्चवर्ग और निम्नवर्ग की मानसिकता में स्वतंत्रता के बाद कोई खास बदलाव नहीं आया है, लेकिन मध्यवर्ग पर परिवर्तन का दबाव अधिक रहा है। इस दबाव के परिणामस्वरूप मध्यवर्ग के दो टुकड़े हो गये हैं। एक टुकड़ा अनावश्यक रूप से पाखण्डी है और दूसरा आशातीत रूप में चिंतित और भयाक्रान्त। इसके बीच मध्यवर्ग का एक बहुत बड़ा हिस्सा है जो जीवन के परिवर्तन की हर दिशा को केवल स्वीकार करना जानता है, वह किसी

भी रूप से संलग्न नहीं है।[1] लेकिन मध्य वर्ग का ऐसा हिस्सा भी है जिसकी जीवन-दृष्टि आधुनिक है और जो अपने तथा दूसरों के अधिकारों के प्रति जागरूक है। यह मध्यवर्ग परम्परा के प्रति अनुदार रुख अपनाते हुए देश में क्रान्तिकारी परिवर्तनों के पक्ष में है। नैतिकता, राष्ट्रीयता, समाजसेवा, परोपकार आदि के मुखौटे के पीछे छिपे चेहरों की वास्तविकता को इस वर्ग ने समझ लिया है, इसलिये इससे संबद्ध मूल्यों को नकारने में उसे कोई हिचक नहीं है।

स्वतंत्रता के बाद भारतीय जन-जीवन पर पाश्चात्य सभ्यता का दबाव बढ़ा है, सांस्कृतिक परम्पराओं और मूल्यों के प्रति उपेक्षा का भाव विकसित हुआ है 'भारतीय मुद्रा का अवमूल्यन तो बाद में हुआ, भारतीय संस्कृति का अवमूल्यन स्वतंत्रता के बाद तुरन्त ही हो गया। भारतीय संस्कृति, स्वीकरण और विकास के स्थान पर उन्हें पिछड़ा प्रतिगामी करार देकर उनके प्रति अश्रद्धा की भावना फैलायी गयी।'[2] आधुनिकता के नाम पर क्लब, काफी हाउस, रैस्तरां और डिस्कोथीक की जो तथा कथित संस्कृति जन्म ले चुकी है, उच्छृंखलता, फैशन मद्यपान यौनमुक्तता आदि उसके अनिवार्य अंग हैं। महानगरों में इस नकली आधुनिकता से प्रभावित लोगों की संख्या अच्छी खासी है।भारतीय संस्कृति के प्रति एक दूसरा अतिवादी दृष्टिकोण भी है जिसमें 'भारतीयता' और 'आध्यात्मिकता' की आड़ में जड़ और निरर्थक मूल्यों की वकालत कीगयी है। इस विचारधारा के लोगों ने अंधविश्वासों और रुढ़ियों को ही संस्कृति का पर्याय मान लिया है। इन विचारों के लोग वर्तमान आर्थिक कृषि और

(१) कल्पना अगस्त- १९६७, परम्परा और आधुनिकता- सुरेन्द्र चौधरी-पृ०३३
(२) 'कुछ चन्दन की कुछ कपूर की' - विष्णुकान्त शास्त्री- पृष्ठ- २३०

सामाजिक संगठन में होने वाले प्रत्येक सुधार अथवा परिवर्तन का विरोध करते हैं। वास्तव में भारतीय संस्कृति के जो अंग अपनी सार्थकता खो चुके हैं, उनके प्रति किसी प्रकार का 'पूर्वाग्रह' या 'मोह' श्लाघ्य नहीं है। संस्कृति का अर्थ है समग्र जीवन का संस्कार दर्शन। इसमें रूप, रुचि, शीलाचार, व्यवहार आदि सभी कुछ समाहित हो जाते हैं और इन सारे विषय वस्तुओं की पृष्ठ भूमि में निहित संस्कार परम्परा का ही नाम संस्कृति है।[1] इस समूची संस्कार परम्परा की अवहेलना अथवा उपेक्षा ही आज की आधुनिकता की पहली शर्त है। धर्म की साम्प्रदायिक व्याख्या, वर्णव्यवस्था सदृश्य सामाजिक रूढ़ियाँ तथा नारी, शूद्र आदि के प्रतिपुरातन-पन्थी पूर्वाग्रहों का विरोध एक स्वस्थ्य प्रशस्ति है परन्तु परम्परा का सर्वथा अस्वीकार वांछनीय नहीं है।

इन कुछ लोगों ने जन संस्कृति या 'श्रमिक संस्कृति' के इर्द-गिर्द सर्जना प्रारम्भ कर दिया है। लेकिन मात्र श्रमिक संस्कृति को लेकर भविष्य की समाजवादी संस्कृति नहीं गढ़ी जा सकती है। लेनिन ने स्वीकार किया था 'वह समूची संस्कृति जो पूंजीवाद हमारे लिये छोड़ गया है, स्वीकार करने की होगी और उसी के माध्यम से (उसी के भीतर से) समाजवादी संस्कृति की रचना की जायेगी। सारा विज्ञान, इंजीनियरिंग, सारा ज्ञान, समूची कलात्मक बुद्धि, सब कुछ को ले लेना होगा। हमें इस बात को स्पष्टता पूर्वक समझ लेना चाहिए कि मनुष्य समाज की सम्पूर्ण विकासधाराओं के मध्य विकसित संस्कृति का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त कर ही और फिर इसी संस्कृति को पुन: खरादकर ही हम समाजवादी संस्कृति की रचना कर सकते हैं, अन्यथा नहीं।'[2]

---

(१) विषादयोग - कुबेरनाथ राय - पृष्ठ- २०८

(२) वही। पृष्ठ- २०३ के आधार पर।

आर्थिक परिस्थितियाँ :-

नेहरू युग की अर्थनीति की यह विशेषता थी कि उसमें मिश्रित अर्थ व्यवस्था स्वीकार की गई थी। उद्योगों के लिये निजी क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र का विभाजन किया गया। निजी क्षेत्र को सरकार द्वारा नियंत्रित करने का प्रावधान किया गया तथा सरकारी क्षेत्र के संचालन के लिए सरकारी निगमों की स्थापना की गयी। "इस नीति का रोचक पक्ष यह है कि उपभोग्य वस्तुओं का उत्पादन गैर सरकारी क्षेत्र को सौंप दिया गया और लाभ उन्हीं वस्तुओं के उत्पादन से अधिक होता है। सरकारी क्षेत्र में नौकरशाही प्रबल हो गयी। अतएव उनमें या तो घाटा रहा या फिर अल्प लाभ मिला।"[1] इसके परिणाम स्वरूप निजी क्षेत्रों पर सरकार के नियंत्रण के बजाय सरकार पर पूँजीवादी निजी क्षेत्रों का दबाव पड़ने लगा। आज निजी क्षेत्रों से कमाया गया 'काला धन' विधान सभा और संसद के सदस्यों, अफसरों और नेताओं को भ्रष्ट करने के साथ-साथ देश की अर्थव्यवस्था को कमजोर करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

समाज के आर्थिक ढाँचे को सुधारने के लिए जो पंचवर्षीय योजनाएँ बनाई गई उनसे समाज के मध्य वर्ग और निम्न मध्यवर्ग को खास लाभ नहीं हुआ है। मूल्य वृद्धि के अनुपात में आय न बढ़ने के कारण ये वर्ग बुरी तरह प्रभावित हुए हैं। सामुदायिक विकास तथा अन्य योजनाओं का पूरा लाभ नौकरशाही के भ्रष्टाचार के कारण जन साधारण तक नहीं पहुँच सका है।[2] पंचवर्षीय योजनाओं के परिप्रेक्ष्य में देश की आर्थिक प्रगति का जो चित्र उभरता है वह भयावह और

(१) हिन्दी वाङ्मय: बीसवीं शती (सं० डॉ० नगेन्द्र) डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय - पृष्ठ- ७६

(२) आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य (प्रथम संस्करण) डॉ० कृष्णबिहारी मिश्र - पृष्ठ- ३१८

निराशाजनक है। कृषि प्रधान देश होते हुए भी हमें अब तक अनाज के लिए विदेशों के आगे हाथ पसारना पड़ा है।

देश की आर्थिक स्थिति में विदेशी पूंजी भी बाधकतत्व रही।सभी देशी-विदेशी प्रतिष्ठानों में उत्पादन वृद्धि हुई है, परन्तु वितरण और उपभोग के स्तर पर शोषण भी बढ़ता गया है। योजनाओं की विफलता और विदेशी पूंजी के दबाव का प्रत्यक्ष दुष्परिणाम यह हुआ कि देश को विदेशों की दया पर निर्भर होने के लिये बाध्य होना पड़ा है। 'स्वतंत्रता के बाद के भारतीय इतिहास के अध्याय का सिर्फ एक ही शीर्षक हो सकता है--- शर्मनाक भिक्षाकाल।'[1] सम्पन्न देशों से अधिक कर्ज पाने की वह याचक मुद्रा आज भी ज्यों की त्यों है। आज भारत पर कई हजार करोड़ रुपये का ऋण है। विदेशी सहायता किसी न किसी स्वार्थ विशेष से संबद्ध होने के कारण प्राय: हानिकर सिद्ध होती है। इसके खतरनाक प्रभावों में एक यह है कि सारे देश में एक प्रकार की हीनभावना विकसित हो गयी है। इस हीन भावना के चलते देश का मनोबल, संकल्प शक्ति और उसका आत्मबल भी विघटित हुआ है।

देश को कृषि और औद्योगिक उत्पादन के क्षेत्र में आत्म-निर्भर बनाने के लिये योजनाओं के माध्यम से जो प्रयास किये गये हैं, वे सभी असफल ही सिद्ध हुए हों ऐसी बात नहीं है। देश के ग्रामीण और नागरिक जीवन में आंशिक खुशहाली तो प्रत्यक्ष देखी जा सकती है। गावों में जमींदारी उन्मूलन, सामुदायिक विकास, कार्यक्रमों, हरित क्रान्ति आदि के शुभ परिणाम सामने आये हैं। सिंचाई की सुविधाओं और यातायात के विकास के साधनों ने गावों को आर्थिक दृष्टि से समुन्नत होने में योग

---

(१) 'माध्यम' (मासिक) जून १९६९-सामयिक भारतीय परिवेश और बौद्धिक वंचना' - डॉ० शिवप्रसाद सिंह - पृष्ठ- १९

दिया है। औद्योगीकरण ने नागरिकों की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने में सहायता की है। भूख और बेकारी पर नियंत्रण पाने में वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति बहुत कुछ सहायक होती है किन्तु भारत की मिलों और कारखानों ने अपने उत्तरदायित्वों को गंभीरता से नहीं लिया और इनके माध्यम से 'पूंजी के एकाधिकार' और 'श्रमिकों के शोषण' को ही प्रश्रय मिलता रहा है। आज देश की आर्थिक नीति नौकरशाही, थैलीशाही और राजनेता के स्वार्थ-शिकंजे में है इसके फलस्वरूप देश में गरीबी और असमानता बढ़ी है। स्वार्थ, विलास और खुशामद के जीवन-मूल्य लोकप्रिय हुए हैं। आर्थिक कार्यक्रमों से असमानता और बेरोजगारी का दायरा कुछ और चौड़ा हुआ है। एक सामान्य और ईमानदार आदमी के लिये जीना आसान नहीं रह गया है। '६६ में रुपये के अवमूल्यन के निर्णय से देश की आर्थिक विषमता का अनुमान लगाया जा सकता है। मुद्रास्फीति और मंहगाई के विस्तार को ध्यान में रखते हुए यह अनावश्यक नहीं है कि राष्ट्र की अर्थनीति पर पुनर्विचार किया जाय और इसके ढांचे में जो गड़बड़ी है उसे अविलंब दूर किया जाय।

देश की आर्थिक प्रगति को बढ़ती हुई जन संख्या और अशिक्षा की चुनौतियां कम गंभीर नहीं हैं। परिवार नियोजन के कार्यक्रम के द्वारा जनसंख्या की रोकथाम का प्रयास अभी तक अपेक्षित सफलता नहीं प्राप्त कर सका है लेकिन शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ इसकी सफलता की संभावनाएँ बढ़ी हैं। शिक्षा किसी भी प्रजातांत्रिक देश की प्रगति का मूलाधार है। 'बिना उपयुक्त शिक्षा के प्रजातंत्र सफल नहीं हो सकता। इससे एक स्वतंत्र देश के नागरिक का व्यक्तित्व ही उसकी अपनी योग्यता के अनुसार विकसित नहीं होगा, वरन् उसमें अनुशासन की भावना और

कार्य-कुशलता भी उत्पन्न होगी ।"[१] अत: स्वतंत्रता के बाद से ही सरकार ने शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया है लेकिन शिक्षा पद्धति में कोई आमूल-चूल परिवर्तन न होने से शिक्षा नीति अधिक कारगर नहीं हुई । हालांकि देश में शिक्षा का प्रसार बढ़ा है नये - नये विश्वविद्यालय स्थापित किये गये हैं । वैज्ञानिक शिक्षा, कृषि - उद्योग कीशिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, पत्राचार पाठ्यक्रम आदि की ओर विशेष ध्यान दिया गया है, फिर भी शिक्षा का व्यवसाय से प्रत्यक्ष संबंध न होने के कारण देश में शिक्षित बेकारों की संख्या तेजी से बढ़ती जा रही है । अभी तक शिक्षा के नाम पर देश में लाखों युवकों के साथ खिलवाड़ ही अधिक हुआ है । स्नातकों की बढ़ी हुई संख्या के अनुसार देश का आर्थिक जीवन व्यवस्थित न होने के कारण बेकारी की समस्या का समाधान कठिन हो गया है ।

सन् ६० के पश्चात् देश की राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों ने जिस परिवेश को जन्म दिया उसने जन-साधारण के साथ साहित्यकारों को भी प्रभावित किया । उनके दृष्टिकोण का यह बदलाव हमें उनकी कृतियों में मिल जाता है । सन् ६० के आस-पास हमारा सभी तरह से मोह भंग हुआ। जितनी आशाएँ हमने संजोयी थी सभी टूट कर जैसे बिखर गई । नयी पीढ़ी समय के साथ दौड़ में पिछड़ गई और उसमें एक निराशा की भावना घर कर गई । "आर्थिक दुरवस्था और बेरोजगारी ने आर्थिक दृष्टि से त्रस्त और महानगरों के फुटपाथों,, चलती फिरती लाशों और झुग्गी झोंपड़ियों के बीच धुएँ, सड़ांध एवं घुटन के बीच जिये जाने वाले जीवन के दृश्यों ने, मँहगाई ने, पदलोलुप भ्रष्ट नेताओं ने युवा पीढ़ी को कुण्ठा और निराशा का शिकार बना दिया है । देश में फैली आपस की फूट ने उसके जीवन में उदासी भरदी है"।[१] इस राजनीतिक व्यवस्था के खोखलेपन सामाजिक असफलता और आर्थिक कमजोरी के स्वर

- -

(१) द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय --- पृष्ठ- ७५

सातवें दशक की कविता में निर्ममता के साथ मुखरित हुए हैं ।

निष्कर्ष :-

स्वतंत्रता के पश्चात पहली बार राष्ट्रीय मोहभंग सातवें दशक के प्रारंभ में चीनी आक्रमण के समय हुआ । राजनीतिक स्तर पर स्वतंत्र भारत की असफलताओं का खुलासा इस समय हो गया । भारतीय राजनीति दलगत स्वार्थों में फंसी रही । राजनेता पदलोलुपता की कीच में बुरी तरह फंस गए । भारत की विदेश नीति भी असफल रही । योजना, चुनाव, संसद तथा सांसद सभी को अविश्वास की दृष्टि से देखा जाने लगा । सामाजिक क्षेत्र में भी स्वातंत्र्य, संयुक्त परिवारों का विघटन, युवा वर्ग की समस्या आदि ने हमारी सामाजिक व्यवस्था को बुरी तरह प्रभावित किया । देश में सुशिक्षित बेरोजगारों की बढ़ती हुई लाइनें सामाजिक जीवन के लिए कलह का कारण बनी । आर्थिक परिस्थितियाँ भी इतनी भयभीत रहीं कि हम इस क्षेत्र में आत्म-निर्भर नहीं हो सके । भारत का मध्यवर्ग तथा निम्न मध्य वर्ग गरीबी के चंगुल से न छूट सका । इन सभी राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों की असफलता के फलस्वरूप चारों ओर अशान्ति तथा भ्रष्टाचार पनपा । हमारा सांस्कृतिक अवमूल्यन भी इन्हीं असफलताओं के कारण हुआ । कुल मिलाकर सातवें दशक में हमारा परिवेशगत वातावरण ऐसा था जिसमें आदमी हताश, निराश और विद्रोही था । भारत की इन असफलताओं ने युवा वर्ग की मानसिकता को बहुत प्रभावित किया ।

ग- समकालीन वैचारिकता::-

स्वतंत्र भारत में जिस सर्वांगीण विकास की आशा थी उसमें से राजनीतिक आर्थिक और सामाजिक मोर्चों पर हम असफल ही अधिक रहें। हम अपने ही स्वतंत्र घर में परतंत्रता का अनुभव करने लगे। पूंजीवादी व्यवस्था ने हमारे सामाजिक जीवन को जकड़ लिया इसके फलस्वरूप आज तक भी मध्य वर्ग विकास के साथ नहीं चल सका। व्यक्ति स्वयं तथा समाज में रह कर भी अपने को असुरक्षित समझने लगा। देश में फैली अराजकता, अनुशासनहीनता, भ्रष्टता तथा अवसरवादिता ने मानव की मानसिक चेतना को भकभोर दिया। मनुष्य की इस चेतना को भारतीय सामाजिक,राजनीतिक,आर्थिक परिवेश ने तो प्रभावित किया ही, साथ ही साथ इसे अधिक प्रश्रय दिया मार्क्सवादी एवं अस्तित्ववादी विचारों ने यह दोनों ही विचारधाराएं वैसे बहुत पहले ही विश्व इतिहास में देखने को मिलती हैं, परन्तु स्वतंत्र भारत में इनका प्रभाव यहां के जनजीवन पर अधिक देखने को मिलता है।

मार्क्सवादी विचारधारा::-

मार्क्सवाद एक वैज्ञानिक विचारधारा है द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और ऐतिहासिक भौतिकवाद जिसके दो प्रमुख आधारस्तम्भ हैं। उन्नीसवीं शती में जन्में और पुष्ट हुए इस भौतिकवादी जीवन दर्शन की बुनियाद रखने का श्रेय कार्लमार्क्स को है, हालांकि इसके निर्माण में फ्रेडरिक एंगेल्स का योगदान भी कम नहीं है। "१६वीं शताब्दी में जिस अव्यवस्थित ढंग से औद्योगीकरण हुआ और उसके फलस्वरूप समाज में जिन भयंकर कष्टों की सृष्टि हुई, उसकी उपजाऊ भावभूमि में मार्क्स का उदय वंचित वर्ग के सर्वाधिक सबल मसीहा के रूप में हुआ।"[१] मार्क्स ने न

(१) राजनीतिक शब्दावली - डब्ल्यू०जे०फिशमन, सं० मारिस क्रेन्सटन (हिन्दी सं० महेन्द्र भारद्वाज) --- पृष्ठ- ५८

केवल राजनीति और समाज, अपितु साहित्य तथा कला के बारे में भी एक नयी समझ और नयी दृष्टि प्रदान की है ।

हेगल ने द्वन्द्ववाद का उपयोग अपनी भाववादी चिन्तना के संदर्भ में किया है जब कि मार्क्स ने इसे भौतिकवादी संदर्भों में अपनाकर सृष्टि और समाज के विकास नियमों की वैज्ञानिक व्याख्या की है । मार्क्स सृष्टि का एकमात्र तत्व पदार्थ या 'मैटर' को मानता है । ईश्वर अथवा ब्रह्म सरीखे किसी तत्व के अस्तित्व में उसे विश्वास नहीं । मार्क्स के अनुसार प्रत्येक पदार्थ में विरोधी तत्वों का संगम होता है और इन्हीं तत्वों के द्वन्द्व से परिवर्तन या विकास की प्रक्रिया जन्म लेती है । विरोधी तत्वों का संघर्ष उनमें निहित अन्तर्विरोधों के फलस्वरूप होता है । इन विपरीतों की एकता जहाँ सापेक्ष - अस्थायी और सशर्त होती है वहाँ उनका संघर्ष स्थायी रहता है इस प्रकार "आधिभौतिक दृष्टिकोण के विपरीत, जो विकास को किन्हीं बाहरी शक्तियों से परिचालित मानता है, द्वन्द्ववादी दृष्टि विकास के मूल में वस्तु में निहित विपरीतों की एकता तथा संघर्ष को स्वीकृति देती है"।[१] द्वन्द्ववाद पुराने तत्वों के निषेध से भी सम्बद्ध है । मार्क्स के अनुसार किसी भी क्षेत्र में तब तक विकास नहीं हो सकता जब तक कि वह अपने अस्तित्व के पुराने रूपों का निषेध न करे । इस निषेध का अर्थ पुरातन का समूल विनाश नहीं है ।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के नियम सामाजिक जीवन के अध्ययन के क्रम में ऐतिहासिक भौतिकवाद के द्वारा ही अपनी सार्थकता और संगति को प्रमाणित कर पाते हैं। इस सिद्धान्त का मौलिक तत्व यह है कि मनुष्य के जीवन के लिए भोजन पहली आवश्यकता है, उसका जीवित रहना इस बात पर निर्भर है कि वह प्रकृति के साधनों से अपने लिए कितनी भोजन

- -

(१) आधुनिक राजनीतिक चिन्तन - हरिदत्त वेदालंकार - पृष्ठ -

(१) मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन: इतिहास तथा सिद्धान्त - शिवकुमार मिश्र --- पृष्ठ - ५० ।

सामग्री प्राप्त कर सकता है। अत: मनुष्य के सब कार्यों में भोजन सामग्री या आहार का उत्पादन सब से अधिक महत्वपूर्ण है।[१] मार्क्स ने प्रकृति की भांति समाज के अस्तित्व या भौतिक जीवन को सर्वोपरि माना है। मार्क्स ने समाज के सम्बन्ध में उत्पादक शक्तियों तथा उत्पादन सम्बन्धों पर भी चर्चा की है। वह श्रम को मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति तथा उत्पादन का महत्वपूर्ण उपादान मानता है। समाज में उत्पादन-विधि के भीतर संबंधों में संघर्ष और परस्पर विरोध रहते हैं जैसे कि आजकल पूंजीपति और सर्वहारा वर्ग में संघर्ष की स्थिति है। पूंजीपति उत्पादन में सीधा हिस्सा न लेकर उत्पादन के साधनों के स्वामी की हैसियत से उत्पादन पर हावी है। सर्वहारा वर्ग स्थिति के सही बोध और अपनी सामूहिक एकता के आधार पर पूंजीपतियों के एकाधिकार को चुनौती दे रहा है।

मार्क्स का दृढ़ विचार था कि आर्थिक परिस्थितियाँ और आर्थिक कारण ही मनुष्य के भौतिक, नैतिक और सामाजिक जीवन के नियामक हैं। मानव इतिहास की आर्थिक व्याख्या करते हुए मार्क्स-वादियों ने पांच युगों की कल्पना की है। इनमें से आदिम समाज, दास समाज और सामंती समाज के युग बीत चुके हैं, पूंजीवादी समाज विद्यमान है और साम्यवादी समाज की स्थापना का श्रीगणेश हो चुका है। इनमें से हर युग की व्यवस्था पूर्ववर्ती की तुलना में अपेक्षाकृत प्रगतिशील रही है। साम्यवादी व्यवस्था के लागू होने पर वर्ग विहीन समाज की स्थापना होगी, उत्पादन के साधनों पर समाज का स्वामित्व होगा और धन का वितरण लोगों की आवश्यकतानुसार होगा। पूंजीपतियों का खात्मा होकर केवल श्रमजीवियों का वर्ग रह जायेगा। यह परिवर्तन 'क्रान्ति' या 'वर्ग संघर्ष' द्वारा ही संभव है।

मार्क्सवाद की उपर्युक्त उपपत्तियां स्वतंत्र भारत की मानसिकता का एक अनिवार्य अंग बनी हुई हैं। प्रत्येक साहित्यकार ने

---

(१) आधुनिक राजनीतिक चिन्तन - हरिदत्त वेदालंकार - पृष्ठ ३०२।

मार्क्सवाद के दबाव का अनुभव किया है, चाहे वह इससे पूर्णत: असहमत ही क्यों न हो। जन साधारण के आर्थिक और सामाजिक जीवन मूल्यों के विघटन और निर्माण में मार्क्सवादी विचारों की भूमिका नगण्य नहीं है।

अस्तित्ववादी चिन्तन:-

अस्तित्ववाद को परिभाषा के दायरे में बांधना संभव नहीं क्यों कि अस्तित्ववादी विचारक किसी प्रकार की परिभाषा में विश्वास नहीं करते- "परिभाषा देने का अर्थ यह है कि अस्तित्व का ऐसा रूप स्थिर कर लेना जो परिभाषा से सम्बन्धित नियमों द्वारा पूरी तरह अनुशासित रहे जिसका भूत, वर्तमान और भविष्य उस परिभाषा में सीमित हो जावे। अस्तित्ववाद के अनुसार मनुष्य के अस्तित्व की परिभाषा इस रूप में नहीं दी जा सकती क्यों कि मनुष्य के भविष्य के बारे में किन्हीं निश्चित नियमों का निर्माण नहीं किया जा सकता वह मूल रूप से स्वतंत्र है, इसलिए सभी परिभाषाओं का अतिक्रमण करता है।"[1] अत: परिभाषा का आग्रह त्यागकर अस्तित्ववाद की कुछ स्थूल स्थापनाओं की चर्चा करना ही समीचीन है।

अस्तित्ववाद के प्रवर्तन का श्रेय कीर्केगार्द को दिया जाता है। इनके उन्नायकों में फ्रांस के सार्त्र, अलबर्ट,कामू एवं जर्मनी के नीत्से और कार्ल्यास्पर्स का नाम उल्लेखनीय है। अस्तित्ववादियों का मत है कि मनुष्य अपने भाग्य का स्वयं विधाता है इसलिए वह सर्वत्र स्वतंत्र है इसलिए परम्परा आदर्श और सिद्धान्त उसे स्वीकार्य नहीं क्यों कि वे उसके विकास में बाधक हैं। "अस्तित्ववाद मनुष्य की नेकी,अच्छाई व सच्चाई व उसकी लोक मंगल की कामना पर भी विश्वास नहीं करता, क्यों कि वह मानता है कि वह अपने निर्णयों में सर्वथा स्वतंत्र है।"[2] धार्मिक एवं

---

(१) अस्तित्ववाद -- महावीर दाधीच - -- पृष्ठ- १८

(२) हिन्दुस्तानी (त्रैमासिक) जनवरी जून,१९७० लेख - आधुनिकता स्वरूप निर्धारण - रमाशंकर तिवारी -- पृष्ठ- १११

आध्यात्मिक मूल्यों को भी अस्तित्ववाद निरर्थक करार देता है ।

आज औद्योगीकरण के युग में मानव का अवमूल्यन हुआ है तथा 'मशीन' ने उसका स्थान ले लिया है । महानगरों का वायुमण्डलीय प्रदूषण, भविष्य की आशंका, वेदना की अनुभूति एवं महत्वाकांक्षाओं की होड़ उसके जीवन में एक असुरक्षा की भावना को जन्म देती है तथा उसे अपने अस्तित्व का बोध होने लगा है ।

अस्तित्ववाद जीवन के प्रत्येक क्षण के महत्त्व को स्वीकार करता है । शाश्वत या सनातन का आग्रह उसे नहीं है । वह वर्तमान में जीता है लेकिन भविष्योन्मुख होकर । 'अस्तित्ववादी मनुष्य जीवित मनुष्य है, वह क्षण-क्षण में जिन्दा रहता है, वह प्रत्येक क्षण अपने आप का पुनर्सर्जित करता है । वह प्रत्येक क्षण मूल्य बनाता है और ये सब काम बिना किसी बाहरी आधार के होता है'।[१] क्षण को भोगने की बात करके अस्तित्ववाद प्रकृतिगामी होने की सूचना देता है और जीवन के यथार्थ से जुड़े रहने की गवाही भी । लेकिन क्षण को महत्त्व देने का ही परिणाम है कि भोग, अनास्था, अविश्वास, कुंठा आदि अस्तित्ववाद के प्रमुख अंग बन गये हैं ।

हेडेगर आदि का विचार था कि मृत्यु जीवन की बाधा न होकर उसकी परिपूर्ति है । लेकिन सार्त्र का विचार है, मृत्यु का मूलभूत गुण उसकी निरर्थकता अथवा विसंगति है । मृत्यु विसंगति इसलिए कि कोई भी व्यक्ति इसका सही अनुमान नहीं लगा सकता, बस प्रतीक्षा भर कर सकता है । यह मानव की तमाम संभावनाओं का अन्त है । चेतना इच्छायुक्त होती है जब कि मृत्यु सभी इच्छाओं का अन्त है । मृत्यु न तु आने तक

(१) अस्तित्ववाद - महावीर दाधीच - पृष्ठ - २२

व्यक्ति स्वतंत्र है। मृत्यु आने के बाद व्यक्ति का अस्तित्व होता ही नहीं। मृत्यु अस्तित्व संकट का चरमक्षण है। इसके साक्षात्कार से व्यक्ति अपने अस्तित्व के महत्व को पहचानता और स्वीकारता है। अस्तित्ववाद के इस मृत्युबोध पर टिप्पणी करते हुए कहा गया है: 'अस्तित्व-वादी दर्शन की सबसे बड़ी दुर्बलता यह है कि वह मृत्यु के संदर्भ में जीवन पर विचार करता है उसके अनुसार मृत्यु जीवन के साथ अनिवार्यत: जुड़ी हुई है अत: जीवन अपने लिये कोई भी चुनाव करने या वरण करने को स्वच्छन्द नहीं है।'[१]

सार्वभौम तत्व अथवा ईश्वर को अस्तित्ववाद नकार देता है। कीर्केगार्ड और यास्पर्स ने ईश्वर की सत्ता पर सीधा प्रहार नहीं किया परन्तु सार्त्र आदि परवर्ती चिन्तकों ने 'ईश्वर' की संभावना पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया। सार्त्र ने तो अपने समूचे दर्शन की भित्ति शून्य और नास्ति की नींव पर खड़ी की है।

अस्तित्ववादी दर्शन नये मानव नये मूल्य तथा नयी मान्यताओं का दर्शन है। अस्तित्ववादी मूल्यों को स्वीकार करते हैं परन्तु इनके मूल्य न तो युग सापेक्ष हैं न समाज सापेक्ष। वह व्यक्ति सापेक्ष है तथा साथ ही साथ अस्थिर और अनिश्चयात्मक भी हैं।

मार्क्सवाद की तरह अस्तित्ववाद ने भी भारतीय रचनाओं की मानसिकता को बहुत दूर तक प्रभावित किया है। 'अस्तित्ववादी दर्शन भी युग परिस्थितियों के संदर्भ में उत्पन्न होने वाली प्रतिक्रिया है और इस कारण आधुनिक भी है। शायद अद्यतन साहित्य में ऐसी जीवन दृष्टि सर्वाधिक मुखर है।'[२] साठोत्तरी कविता की वृहद् काव्य यात्रा में अस्तित्ववादी दर्शन के पड़ाव आसानी से देखे जा सकते हैं। हिन्दी साहित्य में अस्तित्ववाद की दुर्बलताओं को आत्मसात करने की चेष्टा की हुई है लेकिन उसके संवादी स्वरों को उपेक्षित छोड़ दिया गया है।

---

(१) साहित्य संदेश, अक्टूबर-६६ अस्तित्ववाद और नयी कविता-रामगोपाल शर्मा - दिनेश --- पृष्ठ- १३३

(२) हिन्दुस्तानी (त्रैमासिक) जनवरी-जून, १९७० - आधुनिकता स्वरूप निर्धारण रमाशंकर तिवारी - --- पृष्ठ- १११

आधुनिकता-बोध::-

मानवीय इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या यदि कार्ल-मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद द्वारा की तो फ्रायड के मनोविश्लेषण ने मनुष्य को उसके मनोभावों के अनेक जटिल तथा गूढ़ रहस्यों से परिचित कराया। 'डार्विन' ने अपने 'थियरी आफ इवोल्यूशन' द्वारा मनुष्य की धार्मिक भावनाओं को झकझोर दिया था। बाद में मार्क्स और फ्रायड ने उसे और दृढ़ आधार प्रदान किया। विश्व में जिस प्रकार से वैज्ञानिक उन्नति के साथ-साथ औद्योगीकरण का विस्तार हुआ है मनुष्य रूढ़ियों से हटकर अधिक यथार्थ और वैज्ञानिक दृष्टि से देखने लगा है। जो वस्तु कल तक अज्ञान के कारण दैवी चमत्कार बनी हुई थी उसे आज विज्ञान ने तार्किक संतुलित और स्वतंत्र दृष्टि से देखने की कोशिश की है। इसका प्रभाव यह हुआ कि मनुष्य में वैज्ञानिक बुद्धि का प्रादुर्भाव हुआ तथा उसके पुराने मूल्यों में बदलाव आया। इस बौद्धिक जागरूकता ने परंपरागत रूढ़ियों के स्थान पर यथार्थ को महत्व दिया। सभी नैतिक मानदण्ड बिखरने तथा टूटने लगे। व्यक्तिगत धरातल से लेकर सामाजिक धरातल तक एक परिवर्तन सहज प्रक्रिया के रूप में सामने आया। इन सभी परिवर्तनों के मूल में आधुनिक भाव-बोध ही प्रमुख है।

आधुनिकता एक विचार अथवा जीवन दृष्टि है। आधुनिकता को किसी काल देश अथवा जाति की सीमाओं में बांधना सीमित दृष्टिकोण है क्यों कि विचार अथवा दृष्टिकोण किसी काल अथवा देश-जाति की पूंजी नहीं होते। 'आधुनिकता का सम्बन्ध हमारे उन अनुभवों से है जिन्हें हम वैज्ञानिक-औद्योगिक सभ्यता के अनुभव कह सकते हैं।'[१] आधुनिकता

---

(१) नये साहित्य का तर्कशास्त्र: विश्वनाथ प्रसाद तिवारी - पृष्ठ - ५४

जहाँ वर्तमान से सम्बन्धित है वहाँ एक विचार अथवा जीवन दृष्टि भी है जो किसी भी काल में संभव है। तात्पर्य यह कि आधुनिकता समय की चुनौतियों को स्वीकार करने और सत्य को ग्रहण करने की एक यथार्थवादी दृष्टि है। सच्चा साहित्यकार युग की धड़कनों का सीधा साक्षात्कार करते हुए, बदलते हुए संदर्भों को ग्रहण करते हुए रचना करता है। वह युग-मन: स्थिति का भोक्ता और साक्षी होता है। केवल 'वर्तमान' में जीना ही 'आधुनिक' होना नहीं है। 'आधुनिकता बोध' के लिए वर्तमान के प्रति पूर्ण सचेत होना - वर्तमान को गहराई से महसूस करना जरूरी है।[१] आधुनिकता के साथ 'सामाजिक' तथा 'समकालीन' का प्रयोग भी होता है परन्तु ये दोनों शब्द वर्तमान से सम्बद्ध तथा कालवाची हैं। आधुनिकता वर्तमान से सम्बन्धित होते हुए भी मूल्य-बोधक हैं।

आधुनिकता के कारण पुराने मूल्यों के प्रति नये आदमी का मोहभंग हुआ है। वैज्ञानिक-औद्योगिक प्रगति के अनुभवों को जितना यूरोप में भोगा गया है उतना भारत में नहीं। इसी का कारण है कि भारतीय साहित्य में आधुनिकता के फलस्वरूप जो क्षोभ, उत्तेजना, आक्रोश और विद्रोह है वह यूरोप में नहीं मिलेगा। इसका कारण हमारी और उनकी परिस्थितियों का अन्तर ही है। सच्ची आधुनिकता, परम्परा विरोध में नहीं अपितु परम्परा को वर्तमान की कसौटी पर जांचने, परखने में है। जब समय के साथ बहुत सी वस्तुएं अपना अर्थ खो देती हैं तब आधुनिकता समयानुरूप उसमें नये अर्थ को प्रतिष्ठित करती है। आज हम

---

(१) It must be clearly understood that the mere fact of living in the present does not make a mere modern for in that case everyone at present alive would be so. He alone is modern who is fully conscious of the present.
--- Modern Man in search of soul - C.G.Jung- Page: 227

अतीत और वर्तमान में एक प्रकार का तनाव महसूस कर रहे हैं। आज का साहित्य इसी तनाव में लिखा गया साहित्य है। आधुनिकता का आधार यथार्थवाद है। आधुनिकता फैशन से बड़ी चीज है। इसे न अनुकरण कह सकते हैं न प्रयोग। यह तो एक सोचने और जीने का तरीका है।

साठ के पश्चात् भारत में आधुनिकता का बोल-बाला अधिक रहा। चिन्तन के क्षेत्र में व्यापक उथल-पुथल, धर्म और ईश्वर से अलग स्वतंत्र मनुष्य की प्रतिष्ठा, यथार्थवादी रुझान, पुराने अंधविश्वासों को तोड़कर जाति, सम्प्रदाय, रंग-भेद साम्राज्य, उपनिवेश, और शोषण से हीन एक नये सदाम आदमी की ओर संभावना, पुरानी भाषा, छन्द, प्रतीकों के स्थान पर बोल-चाल की शब्दावली, अनुभव की भाषा तलाशने का प्रयास तथा भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता का आग्रह सभी कुछ आधुनिकता बोध से प्रभावित है। इस आधुनिकता-बोध की आज नये आदमी ने अधिक मांगा है। अत: नये साहित्यकार में नयेपन की अधिक संभावनाएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

निष्कर्ष: :-

मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद तथा आधुनिकताबोध ने साठोत्तरी मानव के चिन्तन में परम्परा के प्रति अविश्वास पैदा कर दिया। वैज्ञानिक प्रगति ने मानव-मूल्यों के सामने समस्या पैदा करदी। धर्म, दर्शन, ईश्वर, प्राचीन मान्यताओं और परम्पराओं को मनुष्य ने अस्वीकार कर दिया। अस्तित्व का संकट, असंतोष, विद्रोह तथा अकेलेपन की भावनाएं इन्हीं जीवन पद्धतियों की देन हैं। इन जीवन-दृष्टियों के प्रभाव से कविता भी अछूती नहीं रही।

साठोत्तरी कविता: अभ्युदय और प्रगति::-

तार सप्तक (१९४३) के प्रकाशन के पश्चात् हिन्दी कविता में एक नया मोड़ आया। प्रयोगवादी कवि अन्वेषण के कवि थे। यह प्रयास अधिकतर कलावाद पर ही अधिक आधारित था जिसमें शिल्प सम्बन्धी अनेक प्रयोग हुए। प्रयोगवाद जब समय की गति के अनुसार न चल सका तो १९५४ में नयी कविता का उदय हुआ जो स्वतंत्रता के बाद की आस्था अनास्था सुख-दु:ख और भविष्य के स्वप्निल रंगों की कविता थी। नयी कविता ने नये भारत के साथ उत्पन्न हुई नयी संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का बीड़ा उठाया था परन्तु इस कविता ने ऊपर से तड़क-भड़क तो बहुत दिखाई किन्तु अन्दर-अन्दर यह भी छायावाद का ही अनुगमन करती रही और इसने भी अपना एक संकीर्ण काव्य-संसार बना लिया जो धीरे-धीरे वास्तविक संसार से दूर होने लगा।"[1] स्वतंत्रता के पश्चात् जिस तरह भारत को राजनीतिक आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में असफलताओं का सामना करना पड़ा तथा अनेक देशी - विदेशी विचार धाराओं ने यहां के जन-मानस को प्रभावित किया इसका उल्लेख हम कर चुके हैं। सन् ६२ में चीनी आक्रमण से भारत में एक नए युग का प्रारम्भ हुआ जिसे नामवरसिंह ने 'मोहभंग का काल'[2] कहा है। नयी कविता के बारे में अनेक प्रश्न पैदा हुए। वह मानव जीवन की जटिलताओं को अभिव्यक्ति देने में अपने को असमर्थ पा रही थी इसीलिए मुद्राराक्षस ने नयी कविता के कवियों को 'मैटागार्ग'[3] कहा। 'मैटागार्ग' का अर्थ उससे है जो अपनी कही हुई बातों

---

(१) कल्पना मई, १९७० से मधुसूदन चतुर्वेदी - विश्वनाथ प्रसाद तिवारी पृ०२८

(२) १९६२ से स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी - साहित्य का जो दूसरा दशक आरम्भ हुआ उसे मोहभंग का काल कह सकते हैं।'

--- आलोचना जनवरी-मार्च, १९७४ - हिन्दी साहित्य के पच्चीस वर्ष पृ०७०

(३) वीणा, अगस्त, १९६९ - नयी कविता से अकविता - पृष्ठ - ४९६

award of the degree of ... in Hindi from the Faculty of ...

Dr. ...
Department of Hindi,
Faculty of Arts,
Baroda. (Gujarat State)

Dr. Jagdish Gupta,
Reader in Hindi,
Hindi Deptt.,
Allahabad University,
Allahabad.

Dr. Prem Shankar,
C-98, Sagar Un...
Sagar ...

No. Ex/C/

... accepting the ... of the Syndicate of ... examining and reporting on the ...

... copy of ... is sent ... request to submit a joint report on the above thesis ... done ...

... to take further necessary action ...

Yours faithfully,

REGISTRAR

Teleg

Dated

BARODA-2

MAHARAJA SAYAJIRAO UNIVERSITY OF BARODA

पर आचरण नहीं करता। इसी तरह नयी कविता के कवि भी रहे जो 'पराई जूझन और टूटन'[1] के ही कवि रह गए। श्यामविमल का भी यही मत है कि 'साठ के पूर्व की कविता अन्वेषण के क्षेत्र में नवीनता, मुक्त यथार्थवाद, बौद्धिकता एवं क्षणवाद के जिन तत्वों को लेकर लिखी गई उससे वह नितान्त वैयक्तिक, बेमतलब, नग्न, निराशावादी और पीली होती गई।'[2] जगदीश चतुर्वेदी की राय में नयी कविता 'विरहा गाने वाली छायावादी मैंदिसी' है तो प्रभाकर माचवे के अनुसार 'आदर्शवाद की मूर्च्छना' है। स्वयं नयी कविता के कवि समीक्षक ही इसकी युगीन व की ओर उंगली उठाने लगे। गिरिजाकुमार माथुर को जो रचनाएं एक दूसरे की कार्बन कापी प्रतीत होती हैं[3] तो रामस्वरूप चतुर्वेदी के विचार में 'वे अब चुके और बीते से दीख रहे हैं, अपने को ही दुहरा रहे हैं।' बात यहां तक आ गई कि १९५० से ६० के बीच की कविता को 'नव छायावाद' की संज्ञा दी जाने लगी जिसका समर्थन सुमित्रानंदन पंत ने भी किया। भाषा, प्रतीक, बिम्ब तथा भावबोध के स्तर पर नयी कविता अपने ही जाल में फंस गई तथा उसमें एक प्रकार का 'मैनरिज्म' उत्पन्न हो गया। यह सम्मोहन में हमारे आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक मोहभंग के साथ बिखराव आरंभ हुआ।

सन् १९६० से ७२ तक का समय हिन्दी साहित्य में एक निर्णायक काल कहा जा सकता है। इन १२ वर्षों में हिन्दुस्तान में जितने राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा वैज्ञानिक परिवर्तन हुए उतना ही परिवर्तन का वैविध्य साहित्यिक रंगमंच पर हुआ। सन् ६० के पश्चात् इस बदलाव को सभी कवि समीक्षक स्वीकारते हैं वैसे इस नयी

- -

(१) राष्ट्रवाणी सितम्बर १९६८ - सातवें दशक की कविता - विश्वम्भरनाथ उपाध्याय - -- - पृष्ठ - १२ -

(२) राष्ट्रवाणी विशेषांक - सितम्बर, १९६८ - कविता से गुजरता हुआ युवा मानस - -- पृष्ठ - ६५

(३) धर्मयुग ५ जून, १९६६ - अस्वीकृति का नवोन्मेष: तार सप्तक से अकविता तक (२) -- पृष्ठ - १

संवेदना की शुरूआत १९५८ में नरेश मेहता और श्रीकान्त वर्मा के संपादकत्व में 'कृति' के प्रकाशन से ही हो गई थी जिससे 'नवलेखन' की शुरूआत मानी जाती है और जो नयी कविता से अपना अलगाव घोषित करता है। जिस प्रकार हिन्दी कविता के विभिन्न आन्दोलनों ने अथवा युग की कविता ने अपने से पूर्व की कविता से प्रेरणा ग्रहण करते हुए भी अपना स्वरूप अलग से गढ़ा है। इसी तरह ही साठोत्तरी कविता भी नयी कविता की पीठिका पर होते हुए उससे भिन्नता रखती है। वैसे ६० को कोई लक्ष्मण रेखा नहीं माना जा सकता, क्यों कि साहित्य में विज्ञान की भांति 'संप्रेशन' नहीं हो सकता, दूसरे सन् संवत से जोड़ा जाने वाला सर्जन तर्क पर टिकता नहीं, क्यों कि उसमें सन् संवत या पीढ़ी को ही आगे लाने का व्यर्थ प्रयत्न है 'वस्तु' या कथ्य की अद्वितीयता नहीं। - - - -सन् संवत् और वे पीढ़ियां केवल पहचान या इतिहास के लिए एक सुविधा के सिवा कुछ नहीं है।'[१] फिर भी तीसरे सप्तक (१९५९) के प्रकाशन के पश्चात् नयी कविता का एक अध्याय समाप्त हो गया तथा 'प्रारम्भ' के प्रकाशन से हिन्दी कविता में एक परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा। सन् साठ के पश्चात् युवा लेखक सामने आये जिन्होंने स्वतंत्रता में ही अपनी आंखें खोलीं। इन लेखकों का तेवर पूर्ववर्ती लेखकों से भिन्न था। डॉ० नामवरसिंह ने इस भिन्नता की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि 'व्यक्ति और इतिहास दोनों ही स्तरों पर युवा लेखकों की भिन्नता स्पष्ट है। व्यक्ति के रूप में युवा लेखकों का मानस संस्कार स्वातंत्र्योत्तर भारत में बना तो इतिहास के रूप में फेलने को मिला (साठोत्तरी युग परिवर्तन। व्यक्तित्व का यह विशिष्ट घात-प्रतिघात ही युवा लेखक की भिन्नता

- -

(१) हिन्दुस्तानी संयुक्तांक जनवरी - दिसम्बर, १९६७ - कविता का क ख ग, श्रीराम वर्मा - -- पृष्ठ - १३

का आधार है।[1] लक्ष्मीकान्त वर्मा युवा लेखन के इस विकास को 'स्ट्रीट आर्चिन कल्चर' की संज्ञा देते हैं। उनके अनुसार 'स्ट्रीट अर्चिन कल्चर' स्वयं अमानुषिक नहीं होता। वह अमानुषिकता के संघात से जन्मता है, इसलिए उसमें अपराध के प्रति मोह नहीं वरन् सहज उपेक्षा में अपराध होता है। मैं जब इस पूरी संवेदना को 'स्ट्रीट आर्चिन कल्चर' से संबद्ध करता हूं तो उसके पीछे वे समस्त सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियां आती हैं जिनमें सम्पूर्ण देश की मन: स्थिति खिन्नता और आक्रोश पूर्ण नपुंसकता में घुटकर पिस रही है।[2]

सन् 60 के पश्चात् देश की परिस्थितियों के कारण युवा वर्ग ने जो अनुभव किया उसी की अभिव्यक्ति बनी साठोत्तरी कविता। इसे युवा कविता के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। एक बदली हुई परिस्थिति में इस कविता ने जन्म लिया। वैसे साठोत्तरी कविता सठियाये कवियों की अभिव्यक्ति नहीं है। प्रजातंत्र का तेरह वर्षीय योजनाओं और आश्वासनों का काल इस समय की जिस चेतना की सही पकड़ में आया वे साठोत्तरी कवि कहलाये। कविता अपने बदले संदर्भों की गवाही स्वयं देने लगी----

कितना अच्छा था छायावादी
एक दु:ख लेकर वह गान देता था
कितना कुशल था प्रगतिवादी
हर दु:ख का कारण वह पहचान लेता था
कितना महान था गीतकार
जो दु:ख के मारे अपनी जान लेता था।

---

(1) आलोचना - जनवरी - मार्च, 1968

(2) आलोचना - जनवरी - मार्च, 1968

कितना अकेला हूं मैं इस समाज में
जहां सदा मरता है एक और मतदाता[1]

यहाँ रघुवीर सहाय की उपर्युक्त पंक्तियां साठोत्तरी कविता में बदली हुई संवेदना की ओर स्पष्ट संकेत करती है। परन्तु साठोत्तरी कविता में यह बदलाव अनायास अथवा अप्रत्याशित नहीं है यह उनके परिवेश और अनुभूति की उपज है। साठोत्तरी रचनाधर्मिता में यह बदलाव संकल्पात्मक है और युवा लेखकों का अनुभव है, जो उन्होंने छठे दशक के 'विसंगति, 'विडम्बना' 'जटिलता' जैसे अमूर्त एवं फंतासीय पारिभाषिकों वाले रचनाकर्म को बर्दास्त करने के बाद हासिल किया है।[2] आज भी जब कि साठोत्तरी कविता पूर्णत: स्थापित हो चुकी है तथा हिन्दी के प्राय: सभी कवि और समीक्षकों ने इसके महत्व को स्वीकार किया है वहां कुछेक कवि - आलोचक आज भी इस नाम से या तो चिढ़ते हैं अथवा साठ के बाद किसी प्रकार के परिवर्तन को स्वीकार करने में हिचकते हैं। डॉ० जगदीश गुप्त साठोत्तरी कविता जैसी कोई कविता न मानकर इसे नयी कविता का ही विकास मानते हैं। उनका विचार है कि आज भी नयी कविता सातवें दशक में हुए विभिन्न काव्यान्दोलनों को अपने में समाहित करने की पूर्ण क्षमता रखती है। डॉ० रामदरश मिश्र तथा डॉ० हरिचरण शर्मा भी साठ के पश्चात् बदलाव को दबी ज़ुबान से स्वीकार करते हैं। आज भी जो साठोत्तरी कविता के बदले हुए तेवर को स्वीकार नहीं करते उनके लिए परमानन्द श्रीवास्तव का यह कथन समीचीन है कि 'जिन्हें जान पड़ता है कि ६० के बाद कविता में किसी नये मोड़ का संकेत करना एक झूठ या गलत नारा देना है, वे अंधकार में हैं और शायद रहना चाहते हैं।'[3]

---

(१) आत्म हत्या के विरुद्ध- कोई एक और मतदाता - पृष्ठ- ६६
(२) बिन्दु संयुक्तांक विशेषांक- ३-४-१९७२- लेख- आधुनिकता बोध और जनचित - सीश कुन्तल मेघ - पृष्ठ- ५६१
(३) नयी कविता का परिप्रेक्ष्य - पृष्ठ- १३४

साठोत्तरी कविता अपनी प्रवृत्तियों के कारण पूर्ववर्ती कविता से अपना अलगाव रखती है। युगीन परिस्थितियों के कारण जो सामान्य प्रवृत्तियां उभर कर आईं वे निश्चय ही अपने युग का प्रतिनिधित्व करती हैं। आक्रोश और विद्रोह के स्वर, सपाटबयानी और नूतन शब्द-संसार, मोहभंग युक्त राजनीतिक लगाव, अभिव्यंजना-रूढ़ि, नयी संवेदना तथा व्यंग्यात्मक स्वर आदि प्रवृत्तियां साठोत्तरी कविता की कसौटी हैं।

साठोत्तरी कविता में एक विशेष प्रकार की चेतना थी। यह आवश्यक नहीं था कि यह चेतना केवल युवा कवियों में ही मिलती हो उससे पूर्व के कवियों में नहीं। देश की तत्कालीन परिस्थितियों से निश्चय ही एक विशेष प्रकार की कविता संभावित थी। इस नयी संभावनाओं का अनुभव कुछ नयी कविता के कवि और सप्तकीय कवियों को भी हुआ है। अवस्था में अधिक होते हुए भी दिल तथा दिमाग से इनमें परिवेश की सही पकड़ दिखाई देती है। जिन कवियों ने यथा स्थिति से साक्षात्कार करने का साहस दिखाया है वे निश्चय ही युवा कवियों के समकक्ष ठहरते हैं। साठोत्तरी कविता की प्रगति उसके विभिन्न काव्यान्दोलनों के इतिहास में देखी जासकती है। सन् १९६२ में 'सनातन सूर्योदयी कविता' से लेकर १९७२ में 'विचार कविता' तक की इस अल्पावधि में ही लगभग पचास से अधिक आन्दोलन कविता के क्षेत्र में चलाये गए। कविता की मुद्रा में हुए विभिन्न परिवर्तनों का जायजा इन आन्दोलनों से लगाया जा सकता है।

घ- साठोत्तरी कविता: विविध काव्यान्दोलन:: -

साठोत्तरी हिन्दी कविता के अभ्युदय में रंगमंच पर और नेपथ्य में जो राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि कारण एवं विभिन्न विचारधाराएं सक्रिय रहीं उनसे एक बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि कवि की मानसिकता को उस वातावरण ने बुरी तरह प्रभावित तथा प्रताड़ित किया। इसी कारण समाज, व्यवस्था, परम्परा, धर्म, नीति, संस्कृति, सभ्यता आदि के प्रति उसमें अस्वीकार, आक्रोश और विद्रोह का स्वर उभर कर आया। कवि के सामने एक बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न था अपनी घुटनभरी अभिव्यक्ति का। इसके लिए उसने नये-नये आन्दोलनों और नामों की बैसाखियों का सहारा टटोला। साठोत्तरी कविता का इतिहास विभिन्न नामों, वादों, नारों और आन्दोलनों का इतिहास है क्यों कि इस काल में (१९६० से १९७२ तक) कविता जितने नये नामों और विशेषणों से जुड़ी इतना किसी काल में नहीं। अनेक नये और पुराने कवि अपना अलग घोषणा-पत्र और नामपट्ट लेकर कविता-क्षेत्र में कूद पड़े। इन कविता आन्दोलनों को अनेक छोटी-छोटी पत्रिकाओं ने प्रकाशित तथा प्रचारित किया। इन आन्दोलनों के पीछे हमें तीन प्रकार के कवि दिखाई पड़ते हैं। एक ग्रुप उन असंतुष्ट कवियों का था जो न तार सप्तक ने स्वीकार किए थे तथा न उन्हें नयी कविता में ही स्थान प्राप्त हो सका था। दूसरी श्रेणी में वे कवि आते हैं जो स्थापित होने के लिए नयी कविता के विरोध में आये थे। तीसरे प्रकार के वे कवि थे जिन्होंने साठ के बाद ही लिखना प्रारम्भ कियाथा जिनमें से कुछ खेमेबाजी के विरोध में थे। यह बता देना आवश्यक है कि उपर्युक्त तीनों प्रकार से कवियों का विभाजन नहीं किया जा सकता है, क्यों कि एक-एक कवि कई-कई आन्दोलनों से जुड़ा हुआ है। सन् ६० के

बाद कविता में आन्दोलनों की जो बाढ़ आई उसे डॉ० जगदीश गुप्त ने व्यंग्यात्मक लहजे में `किसिम किसिम की कविता` नामक शीर्षक लेख में इस प्रकार गिनाया है--- सनातन सूर्योदयी कविता, अपरंपरावादी कविता, सीमांत कविता, युयुत्सावादी कविता, अस्वीकृत कविता, अकविता, सकविता, अन्यथावादी कविता, विद्रोही कविता, दृत्कातर कविता, कबीर पन्थी कविता, समाहारात्मक कविता, उत्कविता, विकविता, अकविता, अभिनव कविता, अधुनातन कविता, नाटकीय कविता, ऐण्टी कविता, निर्दिशामयी कविता, लिग्वादलमौतवादी कविता, एब्सर्ड कविता, गीत कविता, नवप्रगतिवादी कविता, साम्प्रतिक कविता, बीट कविता, ठोस कविता, (कान्क्रीट कविता), कौलाज कविता, बोध कविता, मुहूर्त की कविता, द्वीपान्तर कविता, अति कविता, टटकी कविता, ताजी कविता, अगली कविता, प्रतिबद्ध कविता, शुद्ध कविता, स्वस्थ कविता, नंगी कविता, गलत कविता, सही कविता, प्राप्त कविता, सहज कविता, आंख कविता----`[1] इन नामों के बाद कुछ अन्य नामों का भी उदय हुआ जिनमें कु कविता, अति कविता, आज की कविता, पोस्टर कविता तथा विचार कविता आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। कविता के इन विभिन्न नामों में से कुछ महत्वपूर्ण कविता आन्दोलनों का उल्लेख नीचे किया जारहा है ----

अकविता--

अकविता की दागबेल सन् १९६३ में जगदीश चतुर्वेदी के संपादन में प्रकाशित `प्रारंभ` कविता संकलन से पड़ गई थी। इसमें १४ कवियों में जगदीश चतुर्वेदी, कैलाश वाजपेयी, नरेन्द्रधीर, राजकमल चौधरी, कैलाश, ममता अग्रवाल, श्याम परमार, विष्णुचन्द्र शर्मा, श्याम मोहन, मनमोहनी, रमेश गौड़, राजीव सक्सेना, स्नेहमयी चौधरी, तथा नर्मदाप्रसाद त्रिपाठी हैं। सम्पादक ने इन कवियों की दृष्टि को आधुनिक जीवन से

---

(१) `नयी कविता` ८ डॉ० जगदीश गुप्त- -- पृष्ठ- २४७ ।

सम्पृक्त बताकर नयी कविता के 'मैनेरिज्म' से अलगाव का संकेत किया। जगदीश चतुर्वेदी ने कहा कि 'इसमें वही कवि सम्मिलित किए गए हैं जिनमें आधुनिकता के प्रति सहज आग्रह है और जो अपने कवि धर्म के प्रति सजग तथा सचेत हैं।'[1] परन्तु बात शत प्रतिशत ऐसी नहीं थी क्यों कि इनमें से बहुत से कवि नयी कविता में छप चुके थे तथा इस संकलन में इनकी सजगता तथा सचेतता के रूप में यौन-परक कविताएं ही मिलती हैं। उनकी कविता में ताजापन था परन्तु कविताओं की 'वस्तु' यौन परक अधिक थी। यदि राजकमल चौधरी को औरत नंगी नहीं लगती है,[2] ममता अग्रवाल को 'भीड़ के स्पर्श बेहूदे लगते हैं'[3] तो जगदीश चतुर्वेदी को रात का उजड़ा हुआ निश्वास मैथुन रत होकर सो गया[4] जान पड़ता है। स्त्री और पुरुषों के बीच के सम्बन्धों को नयी दृष्टि और दिशा से देखना इन कवियों ने आरम्भ किया जिसमें आक्रोश और अस्वीकार का स्वर भी था। इसी जमीन पर अकविता ने जन्म लिया।

अकविता को ग्वालियर से गोविन्दराम के सम्पादन में निकलने वाली 'अकविता' पत्रिका ने भी प्रश्रय दिया। बाद में यही पत्रिका डॉ० कौमल सिंह सोलंकी के सम्पादन में भी प्रकाशित हुई। ललित कुमार श्रीवास्तव के सम्पादन में जबलपुर से 'कृति परिचय', पत्रिका का अकवितांक जून १९६७ में निकला तथा 'वीणा' का १५ अगस्त १९६६ का भी अकविता विशेषांक इन्दौर से निकला। इन दोनों पत्रिकाओं के विशेषांकों से अकविता का चरित्र काफी हद तक साफ हो जाता है। अकवियों का

---

(१) प्रारम्भ - सं० जगदीश चतुर्वेदी - भूमिका।

(२) प्रारम्भ - सं० जगदीश चतुर्वेदी - पृष्ठ- ९०

(३) प्रारम्भ - सं० जगदीश चतुर्वेदी - पृष्ठ- ११६

(४) प्रारम्भ - सं० जगदीश चतुर्वेदी - पृष्ठ- २७

'विजप' नाम से एक कविता संकलन भी प्रकाशित हुआ जिसमें 'गंगा प्रसाद विमल' 'जगदीश चतुर्वेदी और श्याम परमार की कविताएँ हैं। अकविता का प्रथम अंक १९६५ में निकला जिसमें १४ कवि हैं। चयन कर्त्ताओं में जगदीश चतुर्वेदी, मुद्राराक्षस, रवीन्द्रनाथ त्यागी और श्यामपरमार के तथा प्रस्तावकों में अतुल भारद्वाज, गंगाप्रसाद विमल, गिरिजाकुमार माथुर, तारा तिक्कू, नित्यानन्द तिवारी, प्रभाकर माचवे, भारत भूषण अग्रवाल, राजीव सक्सेना, विनोदचन्द्र पाण्डेय, और सौमित्र मोहन के नाम हैं। इस पत्रिका के फ्लैप पर श्याम परमार का वक्तव्य छपा है जिसमें पिछली परम्परा का अस्वीकार और परिवर्तित सौन्दर्य बोध की बात कही गई है।[१] नये और पुराने तथा अनेक विचार धाराओं से प्रभावित कवि इसमें दीख पड़ते हैं जिनमें 'कन्टेन्ट' और 'फार्म' की दृष्टि से एक रूपता नहीं। गिरिजा कुमार माथुर अकविता को 'अस्वीकृति का नवोन्मेष' मानते हैं जब कि श्याम परमार की दृष्टि में यह एक काल धर्मी, कविता है। 'अकविता' के अ को वह निषेधपूर्ण भी नहीं मानते हैं। उनका विचार है कि--'अकविता शब्द क्रमश: हिन्दी कविता में उभरते हुए नये अंदाज के लिए एक पारिभाषिक शब्द हो चला है। अतएव अकविता कविता विरोधी शब्द नहीं रह गया है। उसे 'एन्टी' या 'नानपोयट्री' कहना भी उतना ही गलत है जितना कि यह आरोपित करना कि अकविता में कविता नहीं। अकविता अन्तर्विरोधों की अन्वेषक कविता है।[२] परन्तु अजित कुमार के विचार से यह शब्द भ्रामक है क्यों कि 'एक और तो इसका प्रयोग उस कविता के अर्थ में किया जाता है, जो कविता हो ही नहीं, दूसरे उस कविता के अर्थ में, जो कविता सम्बन्धी स्वीकृत सिद्धान्तों एवं मान्यताओं को नकारती हुई अपने साक्षात् अस्तित्व द्वारा किन्हीं नवीन सिद्धान्तों एवं मान्यताओं का प्रतिपादन करती है।'[३]

(१) अकविता-१ फ्लैप का वक्तव्य।
(२) अकविता और कला संदर्भ - डॉ० श्याम परमार - पृष्ठ-१
(३) धर्मयुग - हिन्दी काव्य की नयी दिशा - अकविता-अजितकुमार - पृष्ठ-१७।

डॉ० श्याम परमार अकविता को पश्चिमी आन्दोलनों से प्रभावित नहीं मानते। उनके अनुसार जो समीक्षक बीट नाराज और भूखे - प्यासों के साथ अकविता को पश्चिम की अनुकृति कहते हैं वे भूल करते हैं।[१] इन्हीं के दूसरे साथी जगदीश चतुर्वेदी अकविता पर पश्चिमी प्रभाव को स्वीकार करते हैं।

अकविता में नारी और पुरुष के सम्बन्धों को नये दृष्टिकोण से देखा गया है। अकवियों ने नारी के सम्बन्धों, उसके शरीर अवयवों और कामुकतापूर्ण प्रसंगों को अपनी कविता का विषय बनाया क्यों कि जगदीश चतुर्वेदी रोटी, हड़ताल और राजनीति को मोटे विषय मानते हैं। वह पत्नी, प्रेमिका और वेश्या में कोई अन्तर नहीं समझते। वे नंगी औरतें देखना चाहते हैं। उनका इरादा प्रेमिका के शरीर को गन्ने के खेत में तोड़ने का है। उन्होंने उन स्त्रियों से मिलना भी छोड़ दिया है जिनके स्तन इन्तजार करते-करते सिकुड़ कर रबड़ की चपटी गेंद की तरह हो गए हैं।[२] जगदीश चतुर्वेदी स्त्री की टांगों, रानों, यौन, छाती और कमर के आस-पास ही रहना चाहते हैं उनके अनुसार---

उपासनों गृहों में मिथुन रत कुत्ते और गिद्ध
भूनते हैं अपने - अपने अंगों को
चुपचाप ।[३]

कभी इनकी प्रेमिका अपनी काम-भूख को नाली में अल्सेशियन कुत्ते से मिटाती है तो कभी इनकी आंखों की पुतलियों में प्रेमिका के स्तन और यौन-रोम उग आते हैं।[४]

- -

(१) प्रारम्भ - सं० जगदीश चतुर्वेदी - भूमिका
(२) कृति परिचय (अकवितांक) जगदीश चतुर्वेदी - पृष्ठ - १६
(३) अकविता-१ - मृत्युभोग - जगदीश चतुर्वेदी - पृष्ठ - ७
(४) कृति परिचय -(अकवितांक) जगदीश चतुर्वेदी - पृष्ठ - १७

अकवियों का काव्य वैयक्तिक काव्य है। अकविता के कवि सौमित्र मोहन भी औरत के पेट की सीवन उधेड़कर उसके गर्म जल से अपना शिश्न धोते हैं।[१] इस प्रकार के अकवियों की चिन्तन - पद्धति को देखकर यह अन्दाज लगाया जा सकता है कि ये कवि अपनी मृत्यु की सामग्री अपने साथ ही साथ लाये थे। अकवियों में श्याम परमार तथा गंगा प्रसाद विमल कुछ सुलझे हुए कवि हैं, परन्तु यौन सम्बन्धी कविताओं से असंपृक्त उन्हें नहीं कहा जा सकता है। कुछ संयम का परिचय उन्होंने दिया है। अकवियों ने प्रेम को लेकर भाषा को नंगा और सैक्सी बना दिया। ये कवि सामाजिक उत्तरदायित्वों से पलायन के कवि थे अन्यथा इनकी कविता का केन्द्र स्त्री और उसका कामुक शरीर ही न होता। अनेक अस्वीकार और निषेध के भाव इस कविता में मिलते हैं परन्तु ऐसा लगता है कि वे मात्र अपनी विद्रूपता को ढकने के लिए ही है। इस अकविता के मोहन जाल से चन्द्रकान्त देवताले और ललित मोहन श्रीवास्तव जैसे कवि भी नहीं बच सके। कुछेक कवियों ने मात्र चमत्कार - प्रदर्शन के मोह में अपनी प्रतिभा का अपव्यय भी किया है जिनमें सतीश जमाली की 'मानव यौन'[२] कविता तथा राजीव सक्सेना की कविता[३] जिसमें न भाषा की पहचान होती है न अर्थ, न शब्द की। 'अकविता' नगर बोध की कविता है। नगरीय जीवन का चित्रण और उसकी विडम्बनाओं को अकवियों ने अपना कन्टेन्ट बनाया है। अकविता में ऐसी कविताएँ काफी मिल जायेंगी जो अपनी कथनी और करनी में साम्य स्थापित नहीं कर पातीं। कविता के नाम पर अखबारी कतरन नुमा कोलाज कविता[४] भी अकवियों ने सृजित की।

- -

(१) कृति परिचय (अकवितांक) सौमित्र मोहन - पृष्ठ - १६

(२) अकविता -५ सतीश जमाली - पृष्ठ - ७६

(३) अकविता -१ राजीव सक्सेना पृष्ठ - १३

(४) विजप - श्याम परमार - पृष्ठ -१२०

अकविता आन्दोलन साठोत्तरी कविता का सबसे चर्चित आन्दोलन रहा है जिसने बड़े साहस का परिचय देते हुए प्रथम बार पुराने मूल्य और सौन्दर्य-बोध को अस्वीकृत करने का बीड़ा उठाया। कविता के 'वस्तु' और 'शिल्प' के क्षेत्र में नये-नये प्रयोग किए। निश्चय ही इनका दृष्टिकोण लीक से हटा हुआ था परन्तु इन सबके बावजूद 'सेक्स' का ऐसा ताना-बाना अकवियों ने बुन दिया कि उसकी चर्चा किए बिना अकविता में कुछ बचता नहीं है। इन कवियों ने विद्रोह और क्रान्ति को कलंकित करने का प्रयास किया जिससे इस कविता के बारे में भ्रम स्वयं फैल गया। अकविता को एक शारीरिक सम्बन्ध माना जो भूख मिटाने के लिए आवश्यक है यही इसका परिवर्तित सौन्दर्य-बोध तथा मूल्य था।

अकविता में कुछ कवयित्रियां भी सामने आईं जिनमें मोना गुलाटी, मणिका मोहनी तथा ममता कालिया प्रमुख हैं। मोना गुलाटी की कविता में अनेक औरतें और कथाएं जन्म लेती हैं परन्तु वह भी अपने समस्त कार्य-कलाप स्वतंत्र रहकर ही करना चाहती हैं। वह अपनी अतृप्ति पर यहां तक कह देती है-

पूरी पीढ़ी बंजर रहे और बंजर रहे मेरे देश की धरती।[1]

मणिका मोहनी की कविता में एक कभी न समाप्त होने वाली बेचैनी है जो अन्दर ही अन्दर कचोटकर कवि कर्म के प्रति सचेत करती है। आन्तरिक टूटन कभी-कभी अभिव्यक्ति का कारण बनती है।[2] वे

---

(१) अकविता - ५

(२) सुबह होने से लेकर दिन डूबने तक
मैं इन्तजार करती हूं रात का
जब हम दोनों एक ही कोने में सिमटकर
एक-दूसरे को
कुत्तों की तरह चाटेंगे
विवाह के बाद जिन्दा रहने के लिए
जानवर बनना बहुत जरूरी है।

--- कृति परिचय (अकवितांक) --- पृष्ठ-५४

समाज में 'सोसाइटी गर्ल' की भांति 'सोसाइटी व्वाइज' की मांग करती है। नारी यहां आकर खिलवाड़ बन गई तथा भारतीय नारी से अलग एक विशेष तरीके का चित्रण इन कविताओं में किया गया। डॉ० गोविन्द रजनीश का विचार इस प्रकार की पंक्तियों को देखकर उचित लगता है कि 'हिन्दी की अकविता का विद्रोह आत्मरति का विद्रोह है। नारी शरीर के नोंचने - कचोटने का विद्रोह है। इस अघोरी कविता में जिघांसु चीत्कारें मात्र हैं।'[१]

अकवियों ने नये प्रतीकों और बिम्बों का सहारा लेकर अधिकतर अपनी कुंठाओं की ही अभिव्यक्ति की है जो उनके रुग्ण मन का उदाहरण प्रस्तुत करती है।

'अकविता' (ग्वालियर) के जून-अगस्त, १९६८ के अंक में संपादक गोविन्द राय ने स्वीकार किया कि 'अकविता तनाव और फ्रस्ट्रेशन की काव्य परिणति है, जिसे मोटी - मोटी तनख्वाह पाने वाले अपने अनुसार ढाल लेना चाहते थे। इनकी इसी प्रवृत्ति ने अकविता के सम्बन्ध में भ्रम फैला दिए हैं।'[२]

बीट और भूखी - क्रुद्ध पीढ़ी:-

बीट और भूखी पीढ़ी दोनों पर पश्चिमी जगत का प्रभाव है। बीट पीढ़ी यदि अमेरिका के 'बीट जेनरेशन' से प्रभावित है तो भूखी क्रुद्ध और नाराज पीढ़ी इंग्लैण्ड के 'एंग्रीयंग मैन' से। क्रुद्ध पीढ़ी के नारे का जन्म १९५६ में इंग्लैण्ड में जान ऑसबोर्न के नाटक 'लुक बैक इन एंगर' से हुआ। यह नाटक अंग्रेजी 'रंगमंच के पुनर्जागरण का अग्रदूत माना जाता है।

---

(१) मधुमती अंक १९७६- पृष्ठ- १०१

(२) अकविता (ग्वालियर) पृष्ठ- ११

स्तनों के स्तूप, चौड़े कूल्हे, विवश स्त्री, सेक्स का अवचेतन - चित्रण आदि को ही अपनाया। डॉ० कुमार विमल ने ठीक ही कहा है कि 'कुल मिलाकर 'बीट जेनरेशन' का साहित्य - सर्जन सामाजिक, नैतिक और बौद्धिक बंधनों से सर्वथा मुक्त है।'[१] आधुनिकता की होड़ में कुत्सित जीवन दर्शन को इन कवियों ने अपनाया जैसा कि डॉ० कुमार विमल का विचार है कि 'बीट जेनरेशन ने आधुनिकता के एक प्रमुख अभिशाप को अपना समाज - दर्शन बना लिया है।'[२] यह आन्दोलन बाहर से आयात किया गया जिसके माध्यम थे राजकमल चौधरी। डा० जगदीश गुप्त का विचार है कि राजकमल चौधरी के माध्यम से अमेरिका का आयात माल (बंगाल होते हुए) हिन्दी में आया। केवल कविता में ही नहीं अपितु कथा साहित्य में भी।[३] अभिव्यक्ति-१ में आग्नेय, जगदीश चतुर्वेदी, नरेन्द्र धीर, श्याम परमार, राम नरेश पाठक आदि की कविताएँ तथा प्रभाकर माचवे का लेख है। इसका संपादन किया है रमेशकुन्तल मेघ और गंगा प्रसाद विमल ने। माचवे का विचार है कि अभी भारत वर्ष तथा हिन्दी के कवियों ने बीटनिक जीवन को नहीं जिया है केवल उसका आरोपण ही अपने ऊपर किया है क्यों कि, अभी हमारे यहां बीटनिकों वाला साहस, उलटवासियां कहने की हिम्मत, सत्य के विष को पचाने का माद्दा बहुत कम है। अभी सिर्फ बीटनिक शब्द को दुहराते हैं, उसकी सृजनात्मक लावा भरी आग कहां है।[४]

- -

(१) माध्यम जनवरी १९६६ - बीट जेनरेशन - डा० कुमार विमल पृ० ६

(२) वही। पृष्ठ - १०

(३) नई कविता स्वरूप और समस्याएँ - डॉ० जगदीश गुप्त - पृष्ठ २९८

(४) अभिव्यक्ति - एक - सं० रमेशकुन्तल मेघ, गंगाप्रसाद विमल पृ० १३७

भारत में गिंसबर्ग ने जो प्रभाव छोड़ा वह इससे पहले प्रतीकवादी बादलेयर आदि की कविताओं में मिल जाता है। समलैंगिकता के उदाहरण वहां भी देखे जा सकते हैं परन्तु संयत भाषा में।[१] डा० ललित शुक्ल ने भूखी पीढ़ी वाले कवियों के लिए लिखा है कि 'हिन्दुस्तान की भूखी पीढ़ी के लोग भूखों नहीं मरे। उनकी भूख कायिक या फिर मानसिक है। उनकी इस बात से पूर्णत: सहमत नहीं हुआ जा सकता क्यों कि हिन्दुस्तान की भूखी पीढ़ी का कवि थोड़ा बहुत भूखा तो था परन्तु यह बात दूसरी है कि उसने इस भूख को हैवान अथवा शैतानी मूर्ति देदी। रोटी के नाम पर ये कला और संस्कृति को ही खाने लगे जो निश्चय ही भारतीय सभ्यता संस्कृति तथा सामाजिक जीवन के विपरीत था। भारत जैसे देश में नैतिकता और सदाचार को एक दम खूंटी पर नहीं टांगा जा सकता। शरद देवड़ा ने 'कालेज स्ट्रीट का मसीहा' तथा राजकमल चौधरी ने 'मछली मरी हुई' नामक उपन्यास लिखकर कथा साहित्य में भी इस आन्दोलन को सक्रिय किया। यौन उच्छृंखलता का बोल-बाला ही इस कविता में रहा जो अधिकतर देखा-देखी का प्रभाव था। इस प्रकार की प्रवृत्ति को देखकर डॉ० जगदीश गुप्त ने ठीक ही लिखा है कि 'द्रव्य और काम को नितान्त अमर्यादित रूप से ग्रहण करना आधुनिक जीवन के गहन सांस्कृतिक संकट का परिचायक भले ही हो, उसका विश्वसनीय निदान नहीं है, क्यों कि इनके वेग के द्वारा मानवीय सहानुभूति बहुधा कुचल दी जाती है और मनुष्य कंकाल के सदृश्य खोखला दिखाई देने लगता है।[२]

---

(१) दूर से खिचकर आने वाली प्रतिध्वनियां
आपस में मिल जाती हैं
एक दूसरी में संक्रमण करती हैं
और फिर अंधकार पूर्ण
आलिंगन में मूर्च्छित हो जाती हैं इसी तरह खुशबू रंग और आवाज
आपस में मिलकर एक हो जाते हैं
--- शुद्ध कविता की खोज - दिनकर - पृष्ठ - २७१

(२) नई कविता : स्वरूप समस्याएं -

ताजी कविता::-

ताजी कविता का आन्दोलन नयी कविता के जन्म-स्थान इलाहाबाद से ही खड़ा किया गया, और इसके अगुआ बने लक्ष्मीकान्त वर्मा। क.ख.ग. (त्रैमासिक) जुलाई १९६५ के अंक में उन्होंने घोषणा की कि नयी कविता अपने बासीपन के कारण अब अपने को दोहरा रही है। छायावादी संस्कारों से ग्रस्त होने से उसका ताजापन समाप्त हो चुका है इसलिए समकालीन यथार्थ की सही अभिव्यक्ति के लिए ताजी कविता की आवश्यकता है। लक्ष्मीकान्त वर्मा ने अपने घोषणा-पत्र में पुराने प्रतीक, मध्ययुगीन, बिम्ब योजना और बासी लिजलिजी भाषा का अस्वीकार कर नंगी और ताजी भाषा की मांग की। 'ताजी कविता जिस भाषा की खोज में है वह नंगी भाषा है -- आवरणहीन, सज्जाहीन, संस्कारहीन और इन सबसे अधिक ऐसा नंगापन जिसमें आभिजात्य जंगलीपन के ऊपर एक समयबोध की छाप लगा सके। ताजी कविता बिना इस नंगी भाषा के नहीं चल सकती।'[1] ताजी कविता आज के जीवन की जटिलता, विसंगति, विघटन आदि को उदासीनता के स्तर पर 'एब्सर्डिटी' और अर्थहीनता की पद्धति से प्रस्तुत करने का यत्न करती है। यह कविता रूढ़िवादी स्थिति का विरोध करती हुई किसी भी प्रकार की विचारधारा अथवा व्यक्तित्व की कृत्रिमता को स्वीकार नहीं करती। ताजी कविता का यह प्रयास तो श्लाघनीय है कि उसने जीवन की विसंगतियों को यथार्थ रूप से उजागर किया परन्तु केवल निरर्थकता मूल्यहीनता और एब्सर्डिटी का ढोल पीटना ही सब कुछ नहीं है। यह ठीक है कि आज की इन विषम परिस्थितियों का जीवन पर दबाव है, परन्तु यही तो जीवन नहीं है।

---

(१) नये प्रतिमान : पुराने निकष - लक्ष्मीकान्त वर्मा - पृष्ठ-३००

ताजी कविता के नाम से छपने वाली बहुत सी कविताओं में भी ताजापन नजर नहीं आया। मुद्राराक्षस और सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविताएँ जो ताजी कविता के नाम से छपी थीं वे भी ताजेपन को निभाने में असमर्थ रहीं। लक्ष्मीकान्त वर्मा और डॉ० जगदीश गुप्त में ताजी कविता को लेकर काफी छींटाकसी भी हुई। डॉ० जगदीश गुप्त के अनुसार ताजी कविता की असफलता के कारणों में प्रमुख थे-- नये नामों की दौड़ में ताजीकविता एक कृत्रिम प्रयास था। ताजी कविता की घोषणा में लक्ष्मीकान्त वर्मा ने बहुत जल्दी की :, नयी कविता के नये आयामों की ओर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया तथा ताजी कविता में किसी भी ताजेपन का आभास न मिल सका।[1] साठोत्तरी कविता के अन्य आन्दोलनों की भांति ताजी कविता भी धूमकेतु की तरह चमक कर विलुप्त हो गई। 'फिर भी ऐसा लगता है कि हिन्दी कविता के स्वाद परिवर्तन के लिए ताजी कविता की शुरुआत अच्छी रही इन अर्थों में कि उसके पश्चात् हर माह प्रत्येक नई पत्रिका अपना - अपना घोषणा-पत्र लेकर उपस्थित होने लगी ; आये दिन हिन्दी कविता पर नई- नई तख्तियां लटकने लगीं।[2]

सनातन सूर्योदयी कविता::-

'सनातन सूर्योदयी कविता' का नारा 'भारती' (मासिक) के सन् १९६२ के मार्च अंक में वीरेन्द्र कुमार जैन द्वारा दिया गया। नयी कविता के उच्छृंखल अहंवाद के विरोध में यह नारा उठाया गया जिसे उन्होंने 'आगामी कल की ऊर्ध्वोन्मुखी नूतन कविता-धारा' कहा।

---

(१) नई कविता: स्वरूप और समस्याएं- डॉ० जगदीश गुप्त- पृ० २५१-५२

(२) वातायन- सृजन मूल्यांकन अंक नवम्बर, १९६६- पृष्ठ- ५०

यदि नयी कविता 'लघुमानव' की बात कहती थी तो इस कविता में 'अतिमानव' की बात कही । सनातन सूर्योदयी कविता वर्तमान (आज) की अपेक्षा भविष्य (कल) पर अधिक ध्यान देती है । वीरेन्द्र कुमार जैन ने अपनी दार्शनिक शब्दावली में समझाया कि वर्तमान कविता के ह्रास (मृत्योन्मुखता) का कारण आज की मौजूदा कविता - पीढ़ी का ईश्वरद्रोही और क्षुद्र अहंकार से पीड़ित होना है । इस तरह परम भागवत सत्य की अवतारणा और दैवीय शक्तियों का संस्थापन जैन ने करना चाहा । इस कविता आन्दोलन के संदर्भ में अमृता भारती ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था कि 'उनकी (वीरेन्द्रकुमार जैन की) इस दीन स्थिति का राज क्या है ? क्या यही नहीं कि उन्होंने पतन, पराजय, विकलता, कुंठा, सीमितता, एकाकीपन, आत्मभीति, लघुमानववाद, विद्रोह, यातना, रोग, बुढ़ापा, मौत को अपनी अन्तिम सीमा अथवा अन्तिम भाग्य मान लिया है, कि उन्होंने असत्य को स्वीकार कर लिया है, कि उन्होंने स्थितिगत अस्थायी अवस्थाओं के संमुख अपने घुटने टेक दिए हैं और इन पर अपनी अन्तिम हार का हस्ताक्षर कर दिया है ।'[१] विषाद और चिन्मय आनंद, मृत्यु और अमृत, सीमा और असीम की आध्यात्मिक शब्दावली वाली यह कविता धारा समय के साथ न चलने के कारण शीघ्र ही काल कवलित होगई । अपने मत की स्थापना का आग्रह इसमें अधिक था, समकालीन जीवन की पकड़ बहुत ढीली थी । डॉ० जगदीश गुप्त का विचार उल्लेखनीय है कि दो तीन वर्षों में ही इस अभियान की क्या परिणति हुई इसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि 'भारती' १९६४ के जनवरी अंक में 'नई कविता में चित्रित मानव' नामक लेख में डॉ० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय ने नई कविता की

---

(१) माध्यम अप्रैल, १९६६ - पृष्ठ- ५८

तृतीय धारा को 'अध्यात्मवादी प्रयोगवाद की धारा' बताते हुए श्री सुमित्रानंदन पंत के साथ वीरेन्द्र कुमार जैन आदि कवि के रूप में 'सनातन सूर्योदयी' कविता को नत्थी कर दिया।'[१]

श्मशानी पीढ़ी::-

'श्मशानी पीढ़ी' पत्रिका ने 'श्मशानी पीढ़ी' के कवियों का प्रतिनिधित्व किया। ६ अंक निकलने के बाद इसी पत्रिका का नाम 'विभक्ति' हो गया। श्मशानी पीढ़ी के संपादक - कवि निर्भय मल्लिक का विचार है कि युवा पीढ़ी में संस्कारी गदहों की संख्या अधिक है क्यों कि अधिकतर कवियों की दृष्टि और उनका बोध पुराणपंथी तथा बुर्जुआ है। इनकी मान्यता है कि श्मशानी पीढ़ी का कवि अपने परिवेश का साहित्य लिखता है इसलिए ही इन्होंने सव्यसाची, विष्णुचन्द्र शर्मा और विश्वम्भरनाथ उपाध्याय जैसे प्रगतिशील कवियों को भी श्मशानी कवि कह डाला। श्मशानी पीढ़ी के प्रमुख हस्ताक्षर सकलदीप सिंह हैं। इनकी मान्यता है कि श्मशानी कवि-लेखक में बोध - संवेदना और मानसिकता के स्तर पर एक रूपता मिलती है। ये अपने परिवेश के कवि हैं। ये कवि चमत्कार का निषेध कर स्वाभाविकता के पक्षधर हैं। सभ्यता, संस्कृति, दया, ममता, प्रेम, मूल्य, इतिहास और मनुष्य इनके लिए परम्परा विहीन हैं। सकलदीपसिंह का विचार है कि 'समकालीन लेखन के उस हिस्से को भी यह पीढ़ी नंगा करने पर अड़ी है जो सेठों की रंगीन पत्रिकाओं में पूंजीवादी लेखन परम्परा को जीवित रखे रहने की साजिश कर रहा है और सामाजिक स्वस्थता के नाम पर आर्य समाजी लहजे में अपनी अश्लील, लिजलिजी रोमांटिक संवेदना को प्रगतिशीलता या वाम-मार्गी रंग चढ़ाकर आज के करप्शन को आगे बढ़ा रहा है।'[२]

---

(१) नई कविता अंक - ८ पृष्ठ - २४६

(२) विभक्ति - ७ पृष्ठ - १६

आज का कवि जिस संत्रास यंत्रणा और मृत्यु बोध का अनुभव कर रहा है उसे वह दूसरों को भी करा देना चाहता है। निर्मय मल्लिक जब यह कहते हैं कि "मेरे मरने के बाद मेरे शव पर वीर्यपात कर और मूतकर किसी रजस्वला औरत के कपड़ों में लपेटकर उस पार्लियामेन्ट में फेंक देना जहां मुर्दों की भीड़ लगी है और जो हिन्दुस्तान का सबसे बड़ा कब्रिस्तान है"[1] तो इसका संकेत उस यथार्थ की ओर है जिसमें आज भारत की राजनीति के नीति निर्धारक एक विषैली सभ्यता को जन्म दे रहे हैं जिससे पार्लियामेन्ट जैसा पवित्र स्थल भी बदनाम हो रहा है। श्मशानी कवियों में यौन प्रतीक बहुत मिलते हैं तथा निर्मय मल्लिक अपनी भाषा और यौन प्रतीक के कारण अन्य कवियों से भिन्न लगते हैं। निर्मय मल्लिक का 'कुल्हाड़ी' उपन्यास श्मशानी के उद्देश्य को समझने में सहायता प्रदान करता है। श्मशानी कवियों ने सामाजिक ढांचे को क्रान्ति से बदलने की इच्छा जाहिर की परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर पता चलता है कि इनकी क्रान्ति के मूल में सेक्स अथवा काम ही प्रमुख है। डॉ० रामदरश मिश्र के विचार में श्मशानी पीढ़ी नाम उस ऊब को बढ़ाता है जो चौंकाने वाले लोगों द्वारा अभी तक पैदा की जाती रही है तो डॉ० कृष्णभावुक इन रचनाओं में संयम की मांग करते हैं। कुछ लेखकों का विचार है कि श्मशानी पीढ़ी भारत में क्रान्ति की भूमिका निभायेगी परन्तु अभी तक ऐसा कोई लक्षण दिखाई नहीं दिया। भगवान् रजनीश जैसे प्रबुद्ध चिन्तक भी इस आन्दोलन के प्रभाव से न बच सके।

साठोत्तरी कविता:-

साठोत्तरी कविता का संकलन कानपुर से सलिल गुप्त के संपादन में निकला। इसके छः कवियों में सुरेश सलिल, बैजनाथ गुप्त,

---

(१) श्मशानी पीढ़ी -६ पृष्ठ- २७

ललित शुक्ल, चन्द्रेश गुप्त, सलिल गुप्त और जीवन शुक्ल को सम्मिलित किया गया। कवि की कविता के साथ उसका वक्तव्य तथा परिचय भी इसमें है। सलिल गुप्त ने साठोत्तरी कविता की चेतना को स्पष्ट करते हुए समझाया कि साठोत्तरी कविता का कवि अभिव्यक्ति के ढंग पर नहीं बल्कि कथ्य की अधिकाधिक सम्प्रेषणीयता पर विश्वास करता है। उसका कथ्य आत्म अचेतन अथवा सैक्स न होकर आत्म-विस्फोट है जिसका जन्म दमन, नगण्य तथा नकारने जैसे शब्दों का प्रयोग करने के साथ हुआ है। इन कवियों का 'मैं' वैयक्तिक न होकर साठोत्तरी पीढ़ी का सामूहिक है। उनके विचार से जब प्रयोगवाद, नयी कविता, नयी समसामयिक परिस्थितियों के समक्ष आउट आव डेट हो गई, तब नई पीढ़ी सामने आयी और साठोत्तरी कविता का जन्म हुआ।[१] फार्मूला अथवा वाद का विरोध करते हुए अपनी चिन्तन पद्धति को पेश करते हुए उन्होंने लिखा कि 'साठोत्तरी कवि भीड़ या फार्मूले से बंधकर कविता नहीं लिखता है नारों तथा वादों का विरोधी है उसका अपना व्यक्तित्व तथा चिन्तन है। वह नये मूल्यों की स्थापना करने हेतु लिखता है। परम्परा का विरोधी है तथा आत्मोन्मुखी न होकर बहिर्मुखी है।'[२] बैजनाथ गुप्त ने कविता में कविता की आवश्यकता पर जोर देते हुए कहा 'कविता कविता है लंगड़ी भिन्न नहीं-- ऐसी मेरी मान्यता है, किन्तु कथन का यह भी अभिप्रेत नहीं कि कविता आल्हा है। आजकल साहित्य के नाम पर बड़े-बड़े महन्त जो बलगम थूक रहे हैं, कुछ नामधारी आलोचक भी साहित्य की संज्ञा देकर बटोरने में संकोच नहीं करते।'[३] चन्द्रेश गुप्त साहित्य के नाम पर किसी भी प्रकार की खेमेबाजी को पसन्द नहीं करते हैं तो सलिल गुप्त कवि सम्मेलनी कविता

---

(१) साठोत्तरी कविता सं० सलिल गुप्त - पृष्ठ-८

(२) साठोत्तरी कविता सं० सलिल गुप्त - पृष्ठ-९-१०

(३) वही। पृष्ठ-२४-२५

को कविता के लिए घातक हथियार मानते हैं। साठोत्तरी कविता एक आस्था परक कविता है। इसकी वाद मुक्तता का नारा निश्चय ही स्तुत्य है परन्तु इन कवियों में अन्य आन्दोलनों के कवियों की भांति स्थापित न हो पाने की कुंठा भी विद्यमान थी।[१] इस कथन से साठोत्तरी कविता आन्दोलन के कवियों की दोहरी मानसिकता का अंदाज सहज ही लग सकता है।

ठोस कविता:-

ठोस कविता का आन्दोलन सर्व प्रथम १९५३ में ब्राजील में उठा। इसे 'कांक्रीट पोएट्री' के नाम से भी पुकारा गया। इस कविता आन्दोलन के कवियों ने कविता को व्याकरण के नियमों से मुक्त कर उसे ग्राफिक कला की भांति लिखना शुरू किया। जेसिश्रा रिचार्ड के अनुसार 'यह एक ऐसी वैचारिक रचनात्मक क्रिया है जिसमें निश्चित सामग्री से एक ढांचे का निर्माण किया जाता है जो किसी निश्चित विचार या पद्धति के अनुसार होता है।'[२] ठोस कविता का क्षेत्रफल व्यापक है क्योंकि इसका सम्बन्ध साहित्य, कला और संगीत तीनों के साथ है। जब इसमें सार्थक वाक्य-रचना पर बल दिया जाता है तो इसका सम्बन्ध साहित्य से, अक्षरों शब्दों और वाक्यों का ठीक अर्थ न लगने पर जब एक अमूर्त पैटर्न बने तब चित्रकला से और जब कविता पूर्ण ध्वन्यात्मक हो जाती है तो इसका सम्बन्ध संगीत से जुड़ जाता है। अपनी इन्हीं पद्धतियों के द्वारा ठोस कविता आज की जीवन स्थितियों और मन: स्थितियों को चित्र, ध्वनि, रेखा, अंक आदि की सहायता से व्यक्त करती है जो अकाव्यात्मक पद्धति ही है। समसामयिक जीवन की सांकेतिक व्यंजना अथवा अभिव्यक्ति के बावजूद भी वह सतही और मात्र प्रयोगात्मक

---

(१) नया काव्य नये मूल्य - ललित शुक्ल - पृष्ठ- २८१
(२) धर्मयुग ११ दिसम्बर, १९६६- ठोस कविता: देश में लतीफा और विदेश में आन्दोलन - सौमित्र मोहन - पृष्ठ- १७

चेष्टा ही दिखाई देती है। कुर्सी (राजीव सक्सेना) टौटम (जिसमें मैं मैं मैं की आवृत्ति है। (श्यामपरमार) पाँच (सौमित्र मोहन) आदि ठौस कविताएँ चौंकाती भर हैं कोई स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ती। डॉ० प्रेम प्रकाश गौतम का विचार समीचीन लगता है कि 'वस्तुत: पश्चिमी काव्य-क्षेत्र की खिलवाड़ी और नवीनता का आग्रह रखने वाली शिल्पवादी प्रवृत्तियों का अनुकरण करने वाली इन रचना-चेष्टाओं का मूल्य चौंकाने, नवीनता का आभास पैदा करने और आत्म-विज्ञापन करने से अधि अधिक कुछ नहीं है।'[1] ठौस कविता भी अकविता की तरह घोर वैयक्तिक प्रयास ही था।

युयुत्सावादी कविता::-

अप्रैल सन् १९६५ के लगभग एक आन्दोलन युयुत्सावादी कविता के नाम से रूपाम्बरा (कलकत्ता) की कोख से जन्मा है जिसके प्रमुख व्यक्तित्व थे 'शलभ' श्री रामसिंह। इसको बाद में युयुत्सा' नामक पत्रिका मे पल्लवित किया। युयुत्सावादी कवि संयत विद्रोह की बात लेकर आये। इसके घोषणा-पत्र के अनुसार युयुत्सावाद नई ईमानदार पीढ़ी के अन्दर उठता हुआ एक क्रांति वाद है आधुनिकता जिसका नारा नहीं लक्ष्य है। रूपाम्बरा के संपादक स्वदेश भारती ने स्वीकार किया कि' मैं साहित्य सृजन की मूल प्रेरणा के रूप में उसी आदिम-युयुत्सा' को स्वीकारता हूं जो कहीं न कहीं प्रत्येक क्रान्ति, परिवर्तन अथवा विघटन के मूल में प्रमुख रही है। वह युयुत्सा जिजीविषा-वादी मुमूर्षावादी, विद्रोहात्मक अथवा 'प्लैटोनिक' कुछ भी हो सकती है।'[2]

- -

(१) चिन्तन - लेख- साठोत्तरी हिन्दी कविता- पृष्ठ- १२६।

(२) युयुत्सा दिसम्बर ६७ - पृष्ठ- ४।

ये कवि चिन्तन के स्तर पर विद्रोह के समर्थक हैं। वे यांत्रिकता को गलत हाथों से मुक्त करना चाहते हैं। परन्तु इन कवियों ने परम्पराओं का भंजन कर अपने साहित्य को कल के लिए दिशाबोध करार देकर एक नई रूढ़ि के निर्माण करने का प्रयास किया। 'युयुत्सा' पत्रिका में पहले तो युयुत्सावादी कविताओं के प्रति आग्रह रहा परन्तु बाद में उसका निर्वाह न हो सका। हां सामाजिक ढांचे में परिवर्तन और क्रान्ति के लिए उसका मोह वैसा ही बना रहा - 'बुद्धिजीवियों और जनता का एकबद्ध होकर समाजवादी व्यवस्था की ओर द्रुतगति से बढ़ने के लिए क्रान्ति लाना ही एकमेव करणीय है जिसके बाद सारी समस्याएँ और अभाव हमेशा के लिए शेष हो जाते हैं। केवल उसी व्यवस्था में ही भाषा, जाति, सम्प्रदाय और धर्म के मसले सब स्वाभाविक क्रम से और तीव्र गति से हमेशा के लिए समाप्त हो सकेंगे।'[1] डॉ० जगदीश गुप्त ने रूपाम्बरा के संपादक स्वदेश भारती के कथन को उद्घाटित करते हुए कहा कि वे जिजीविषा और मुमूर्षा दोनों को एक ही मार्ग पर चलाना चाहते हैं जो स्वयं अन्तर्विरोधी हैं।[2] १५ अगस्त १९६८ को युयुत्सावादी कविता का संकलन 'युद्ध युद्ध युद्ध' प्रकाशित हुआ तथा अगले वर्ष २६ जनवरी, १९६९ को 'मुखौटे, सलीब, युद्ध, काव्य, संकलन प्रकाशित हुआ जिसमें कवि थे-- चन्द्रमौलि उपाध्याय, नीलम, राजीव सक्सैना, शरद, आनंद सोनक्लकर, रामाश्रय, सविता और उमेश। इसकी भूमिका में उमेश ने कहा था कि 'युद्ध सही भूमि पर सही कारणों और स्थितियों पर होना चाहिए। उसका थोड़ा सा भी कोण बदल जाने पर वह अर्थ के स्थान पर अनर्थ-वाहक हो जाता है। क्रान्ति की पहली शर्त ही हर चीज को गलत

---

(१) युयुत्सा दिसम्बर - १९६७ - पृष्ठ - ४

(२) नई कविता स्वरूप और समस्याएँ - पृष्ठ - २४४

समझना है, तभी विद्रोह में तेजी आयेगी, किन्तु नये निर्माण का नक्शा भी दिमाग में होना चाहिए वरना लक्ष्य भ्रष्ट विद्रोह केवल आत्म हन्ता ही साबित होता है । [१] चन्द्रमौलि उपाध्याय की कविता[२] 'युद्ध श्रेयस्' में अपमानित धरती की चीत्कार को सुना जा सकता है ।

युग की संकट पूर्ण स्थितियों के प्रति ये कवि सजग थे तथा वर्तमान की विद्रूपताओं का इन्हें बोध था । अत: आदिम युयुत्सा की प्रवृत्तियों की ओर इनका झुकाव आधारहीन नहीं कहा जा सकता, सामाजिक ढांचे में परिवर्तन आवश्यक है परन्तु मानव नियति की अन्तिम परिणति युद्ध ही तो नहीं है । इन कवियों का अटूट विश्वास है कि

- -

(१) मुखौटे सलीब युद्ध - भूमिका

(२) सिर्फ धरती रहने दो , सिर्फ धरती
तुम उठा लो अपनी जाति मेरे वक्ष से
मैं बंजर नहीं रहूंगी
फिर कभी कोई पैदा होगा मनु जात
एक लाख साल के बाद
जिसके हाथों में होंगे
सही रचना के सामान
सच्चे विध्वंस के हथियार
इतिहास की सच्ची रास
तुम इतिहास को मुक्त कर दो
छोड़ दो मेरी छाती
मेरा मातृत्व अब सो जाना चाहता है ।

--- युद्ध श्रेयस् --- चन्द्रमौलि उपाध्याय - पृष्ठ- १०

युद्ध अनिवार्य है क्योंकि सत्य - अहिंसा का उपदेश देने वाले भी इसके मंडराते बादलों को टालने में सक्षम नहीं हो सके । युयुत्सावादी कविता ने कुछ अच्छी कविताएं भी दीं परन्तु अपनी एकांगिता और वादी मनोवृत्ति के कारण युयुत्सावाद कुछेक रोचक प्रतिक्रियाएं उभारने के अलावा कुछ खास योगदान न दे सका ।

अस्वीकृत कविता::-

अस्वीकृत कविता के साथ श्रीराम शुक्ल का नाम मुख्य रूप से जुड़ता है । यदि युयुत्सावादी कविता में युद्ध की मुद्रा है तो अस्वीकृत कविता में अस्वीकार का स्वर प्रखर हुआ है । इन दोनों कविता आन्दोलनों के मूल में विद्रोह है जो समस्त साठोत्तरी कविता का प्रमुख स्वर है । श्रीराम शुक्ल जब 'मरी हुई औरत के साथ संभोग' के लिए तैयार हो जाते हैं[1] तो वे अपने को अकविता वादियों की श्रेणी से नीचे नहीं रख सकते और उनकी ये मुद्रा एक अघोरी की मुद्रा दिखाई देती है । अस्वीकृत कविता को मसीहाई शैली में समझाया गया कि 'अस्वीकृत कविता परिवर्तनशील कविता है । हीट की कविता है । हमने महसूस किया, किसी दूसरे नक्षत्र का अन्तरिक्ष यात्री मेरी धरती के अनजाने और अदृश्य सुरम्य अंगों के फ्लैश स्नैप्स ले रहा है और हम खुश हो गए--- मैं इस बात पर विरोध प्रकट करता हूं कि धरती ने अपने गुप्तांगों को खोला ।'[2] उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि अस्वीकृति कविता के कवि ने अपने को पुरानी परिपाटी और काव्य-शैली से चिपकाना अच्छा नहीं समझा । रामेश्वर दयाल 'मानव' का विचार है कि 'एक समय तो हिन्दी नवलेखन में अस्वीकृति का ऐसा जोर चला कि

---

(१) उत्कर्ष जुलाई - १९६६

(२) अर्थ -४ नवम्बर, १९६६ ।

कवि स्वयं अपने को भी अस्वीकृत कर बैठा ।'[1] इस कविता की अनुभूति समस्त पीढ़ी की अनुभूति है । इन कवियों ने नये मुहावरों के प्रयोग का जोखिम उठाकर अपने को अन्य कवियों का अग्रणी घोषित किया, परन्तु श्रीराम शुक्ल के अस्वीकार की मुद्रा में केवल गर्म, जवान और नंगी लड़की ही थी । इसलिए उन्होंने कहा 'मुझे मत छूना मैं कपूर हूं ।' श्रीराम शुक्ल की 'प्रतीक प्रश्न'[2] जैसी कविताओं के संदर्भ में जर्मन, विद्वान, लोठार, लुत्से का कथन सटीक लगता है कि 'यह एक ऐसा साहित्य है जिसकी चेष्टाएं नितान्त असाहित्यिक और साहित्य विरोधी है । साहित्यिक पेशावाद, उसकी घुसपैठ और अहंकार की अस्वीकृति काबिले तारीफ है, हालांकि नतीजा इसका भी असाहित्यवाद न होकर साहित्यवाद का निषेध है । इसके पीछे वह भयंकर रोग छिपा हुआ है जो परम्परागत हिन्दू मान्यताओं और इण्डो-विक्टोरियन संहिताओं को नष्ट करने पर उतारू हैं ।'[3] अस्वीकृत कविता को चर्चित करने के लिए 'न' पत्रिका सुशील कुमार के संपादन में लखनऊ से निकली जिसमें नकार का स्वर ही प्रमुख था । बजरंग विस्नोई, विमल पाण्डे, नीलम आदि ने 'अर्थ' नामक पत्रिका में अनेक समीक्षात्मक लेख लिखे । राजकमल चौधरी और बंगाल की भूखी पीढ़ी के कवि मलयराज चौधरी को भी इस कविता के साथ नत्थी कर दिया गया । इस कविता आन्दोलन का दुर्भाग्य यह रहा कि इसमें वैयक्तिक सृजन (कविताएं) कम हुआ - समीक्षाएँ और व्याख्याएँ अधिक हुईं । कुछ कवियों ने राजनीतिक दांवपेच की तरह विरोध के लिए

---

(१) अर्थ-४ नवम्बर, १९६६

(२) 'रीता फारिया (विश्व सुन्दरी १९६६) अब अमेरिका के शिश्न पर विपरीत रति की मुद्रा में गिरती हुई भारतीयता का प्रतीक बन गई है और देश के हथौड़े अपनी विवशता में लद गए हैं ।'

(३) साहित्य : विविध संदर्भ - डॉ० लोठार लुत्से - पृष्ठ-३४

विरोध करना ही अपना उद्देश्य बना लिया। यह आन्दोलन तो कालान्तर में समाप्त हो गया परन्तु अस्वीकार का स्वर आज तक है।

सहज कविता:-

सहज कविता का नारा मार्च १९६७ में अलीगढ़ से डॉ० रवीन्द्र भ्रमर ने उठाया। वैसे डॉ० भ्रमर के अनुसार यह कोई नारा या सतही आन्दोलन नहीं है अपितु आज की अस्थिर तथा विषम काव्य परिस्थितियों में कविता की खोज है।[1] सहज कविता सहजता और स्वाभाविकता की माँग करती है। सहज कविता की घोषणा में असामाजिक और अमानवीय क्रियाओं का निषेध करते हुए युगीन और सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह कर लय और गद्यात्मकता दोनों की अतिशयता को असहज माना गया। अकविता की यौन प्रवृत्ति, अपेक्षित मैनरिज्म, शिल्प चमत्कार, मृत्युबोध तथा निराशा की प्रवृत्ति को सहज कविता ने स्वीकार नहीं किया। सहज कविता को प्रथम बार रूपायित करते हुए कहा गया कि रचनागत परिप्रेक्ष्य में सहज का दायित्व अनुभूति और अभिव्यक्ति की अपेक्षित कृत्रिमताओं से बचने का दायित्व है जो अपने - आप में कला - साधना का प्रतिमान बनता है। प्रस्तुत संदर्भ में 'सहज' शब्द का व्युत्पत्ति मूलक अर्थ लेना होगा--'सहजायते इति सहज' अर्थात् जो रचना यथार्थ अनुभूति - संवेग के साथ वाणी के मूर्त माध्यम में जन्म लेती है, वह सहज है। इस दृष्टि से अनुभूति की प्रामाणिकता प्राथमिक वस्तु है।[2] इस प्रकार सहज कविता में 'सहज' का अर्थ सरल न होकर कृत्रिमता की लकीर से हटने के लिए स्वाभाविकता के लिए प्रयुक्त हुआ है।

सहज कविता का संकलन १९६८ में सामने आया जिसमें

---

(१) समकालीन हिन्दी कविता - डॉ० रवीन्द्र भ्रमर - पृष्ठ- १२०

(२) सहज कविता - सं० डॉ० रवीन्द्र भ्रमर - पृष्ठ-

४१ कवियों की ६२ कवितायें थी। कविता के सम्बन्ध में कुछ नये पुराने कवियों तथा आलोचकों के वक्तव्य भी इसमें है। सहज कविता के कवि किसी प्रकार की सहजता का परिचय न दे सके क्यों कि इसमें घुमाफिराकर बहुत से वही कवि मौजूद थे जो समकालीन अन्य आन्दोलनों के साथ भी किसी न किसी रूप में जुड़े हुए थे।

अगली कविता::-

अगली कविता का प्रकाशन श्रीमानंद रूपराम सारस्वत ने १९६५ में वल्लभ विद्यानगर (गुजरात) से किया। अगली कविता के अनुसार अकविता आदि की अनास्था, कुंठा विषाद तथा पीड़ाओं के लिए इस कविता में कोई स्थान नहीं है। इस कविता के घोषणा-पत्र से मालूम होता है कि ये कवि लकीर की खोज में नहीं है वरन् एक सुनिश्चित पथ की ओर अग्रसर हो रहे हैं। "हम राहों के अन्वेषी नहीं है। एक सुनिश्चित मार्ग है हमारे सामने - आस्था का विश्वास का जीने का, अनुवाचन की लयात्मक तीव्रता में भावनाओं की बुद्धिप्रसूत प्रेरणाओं की साकार अभिव्यक्ति का।"[१] उनके अनुसार आगे की कविता मृत्युन्मुखी कविता न होकर आस्थापरक कविता होगी जो जीवन जीने के लिए और जीना जीवन के लिए प्रस्तुत करने वाली आस्था की सामाजिक भूमि है। व्यक्ति-जीवन की जिजीविषा और गतिशीलता इस बात की द्योतक है कि हमारी परिणति मृत्युन्मुखता नहीं है। हम एक सार्थक जीवन जिएं केवल पीड़ा कुंठाओं तथा अनास्था आदि की धुरी पर ही ठहर जाना एक अशुभ लक्षण है। लेकिन इन सबको भोगते हुए जीने की क्षमता को बढ़ाना उसे पीढ़ियों दर पीढ़ियों तक संजोये रखना "अगली कविता" का उद्देश्य है। इसके बावजूद

---

(१) अगली कविता-२ से श्री० रू० सा० - पृष्ठ-१

भी अगली कविता के अंकों[1] में बहुत सी ऐसी कवितायें मिल जाती हैं जो स्वयं उसके घोषणा पत्र से मेल नहीं खाती हैं ।

विचार कविता::-

'विचार कविता' शब्द का प्रयोग सर्व प्रथम १६७० में श्याम परमार ने किया । 'मतान्तर' पत्रिका के मार्च १६७० के अंक में उनकी तीन कवितायें इसी के नाम से छपीं । गिरिजाकुमार माथुर की एक कविता इसी वर्ष धर्मयुग में 'इतिहास के खराहों से' छपी जिसे उन्होंने 'विचार कौलाज' कहा था । 'संचेतना' के संपादक महीपसिंह और नरेन्द्रमोहन ने दिल्ली से संचेतना का विचार कवितांक निकाला । बाद में यह संकलन रूप में १६७२ में प्रकाशित हुआ इसमें संग्रहीत ३६ कवियों की कविताओं को पांच भागों में बांटा गया है -- संघर्ष की नियति, कल की लड़ाई के लिए, वर्तमान से संवाद करते हुए, विद्रोह की विडम्बना, विसंगत परिवेश में । विद्रोह की विडम्बना शीर्षक में ८ कवि तथा शेष चार में ७,७ कवि हैं । इसमें संपादक और कवियों के वक्तव्य भी हैं । विचार कविता की रूपरेखा को स्पष्ट करते हुए कहागया कि विचार कविता का तात्कालिक संदर्भ इतिहास या दर्शन या अन्य कोई सिद्धान्त न होकर समसामयिक स्थिति ही है ।'[2] विचार कविता का सम्बन्ध किसी वाद विशेष से नहीं है । यह तो अनुभव से आगे की कविता है । क्यों कि आज की कविता अनुभव की कविता है परन्तु जीवन के सत्य को परखने के लिए अनुभव और विचार में टकराव आवश्यक है । 'विचार कविता समसामयिक स्थितियों की गहरी समझ और पहचान पर बल देती है, और इसमें भावुक या रोमानी हुए बगैर

- -

(१) अगली कविता १, २, ३ औ० रू० सा० -

(२) विचार कविता की भूमिका - नरेन्द्र मोहन - पृष्ठ- १५

व्यक्तियों और स्थितियों के भीतर की विसंगति और विडम्बना का उद्घाटन किया जाता है।'[1] नित्यानंद तिवारी का विचार है कि 'आधुनिक युग में आस्था और विश्वास का स्थानापन्न है विचार। आधुनिक युग पर सरसरी निगाह डालने वाले को भी यह आभास होगा कि विचार और चिन्तन की प्रवृत्ति ने ही उसे मध्ययुग से अलगाया है।'[2] अत: स्पष्ट है कि आज की विषम स्थिति से साक्षात्कार अथवा उसे समझने की प्रक्रिया लिजलिजे अनुभव से नहीं हो सकती उसके लिए विचार की बहुत जरूरत है परन्तु कोरा विचार कविता को ह्रास की ओर ही ले जायेगा। विचार कविता' में अनुभूति और विचार के संतुलन को ही अपना मार्ग घोषित किया है। इस तरह वस्तु और शिल्प के संतुलन[3] की बात इन कवियों ने उठाई है। इस तरह से विचार कविता में अनुभव को स्थान देकर भी विचार को महत्ता प्रदान कीगई। डॉ० रामदरश मिश्र के अनुसार विचार के बिना कविता की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। 'आज की कोई भी स्वस्थ कविता वह चाहे गीत ही क्यों न हो, विचार से मुक्त नहीं रह सकती।'[4] विचार कविता में नये जीवन सत्यों की खोज, मूल्यों के अन्वेषण और सामाजिक साक्षात्कार की बात कही गई। मगर विचार कविता ने सम्पूर्ण भावुकता अथवा रोमानी प्रवृत्ति को त्याग दिया

- -

(१) विचार कविता की भूमिका - विचार कविता का संसार-हरदयाल पृ० ३१

(२) विचार कविता की भूमिका - विचार और काव्य का आधुनिक विघटन-पृ०१७

(३) 'जिस तरह शत - प्रतिशत विचारात्मकता कविता को निष्प्राण बनाती है, उसी तरह शत-प्रतिशत कलात्मकता उसे कविता नहीं, सिर्फ कम्पोजिशन रहने देती है।'

--- विचार कविता की भूमिका - विचार और कलात्मकता का संतुलन - ऋतुराज - पृष्ठ - ५८

(४) विचार कविता की भूमिका - विचार कविता: एक सशक्त आयाम-पृ० ६५

है इससे वेणुगोपाल सहमत नहीं है। उनका मत है कि विचार कविता के संदर्भ में दिये गये विचार-सूत्रों का रुझान, प्रेम कविताओं या वैसी अन्य कविताओं के विरोध में है। मैं खुद को इसके खिलाफ पाता हूँ।[१]

इस देश का राजनीतिज्ञ पिछले २०, २५ वर्षों से अपने विचारों का भारत बना रहा है और उसके विचार का हिन्दुस्तान इस प्रकार है---

एक ठहरे हुए दलदल की
जाहिल व गंवार हिन्दुस्तान की
किसी बदब मतदाता की पीठ पर चढ़कर
उसे घोड़े की तरह लतियाते हुए
हांकते हुए ----
एक ठहरा हुआ नरक
और उससे ऊपर उठी हुई
चन्द इमारतें गलीचों के ऊपर चमचमाती
मेजें ---
पूरा हिन्दुस्तान एक 'रोश गुल्ला'
और हड़प ----[२]

विचार कविता में 'वस्तु' का प्राधान्य है। राजीव सक्सेना के विचार में विचार कविता की अवधारणा शिल्प परक नहीं, विषय-वस्तु परक है। वह तो यथार्थ जगत के संवेदन को, उसके तमाम अन्तर्विरोधों सहित, सर्वांग और गतिशील रूप में ग्रहण करने की एक यथार्थोन्मुखी, गैर रूमानी प्रणाली है जिसकी अभिव्यक्ति के लिए विषय-वस्तु के अनुरूप, अलग - अलग पैटर्न हो

---

(१) विचार कविता की भूमिका - विचार कविता: सक्रिय जागरूकता का प्रश्न --पृष्ठ-

(२) वही। तस्वीर - अनुराग - पृष्ठ- १८३

सकते हैं --- सहज संवाद से लेकर फंतासी तक ।[१] इस तरह से विचार कविता अभिव्यक्ति में सरल तथा सपाट नहीं है। यह जटिल रचना संसार कीसंगति ठोस संदर्भों में खोजती है। इन कवियों का विचार है कि वर्तमान की बदली हुई स्थितियों का सही मूल्यांकन विचार कविता ही कर सकती है। चन्द्रकान्त देवताले के विचार में युवा कविता और विचार कविता में अभेद है क्यों कि "कमोबेश रूप में विचार कविता का मसौदा वही है जो आज की युवा कविता का चरित्र और स्वभाव है।"[२] परन्तु देवताले विचार कविता नाम को सार्थक नहीं मानते।[३] इसी प्रकार का मत वेणुगोपाल का है। उनके अनुसार "विचार कविता कहना उतना ही निरर्थक और हास्यास्पद है जितना आदमी को हड्डी - आदमी कहना।"[४] विचार न्यूनाधिक रूप में कविता के साथ आदि काल से ही रहा है फिर उसमें उसके महत्व के प्रदर्शन की आवश्यकता को इतना महत्व क्यों दिया गया। चाहे इस कविता के कवियों ने इसे आन्दोलन नहीं माना परन्तु इसकी प्रकृति साठोत्तरी कविता के अन्य आन्दोलनों की भांति ही है जो शनैः - शनैः खुद ब खुद ठंडी पड़ती गई।

अन्य आन्दोलन::-

अनियमित कालीन प्रकाशनों में "आज की कविता" में आज की कविता को प्रकाश में लाया। "आज की कविता" केवल वर्तमान परिवेश में आज के व्यक्ति को देखने का प्रयास करती है। कल की नियति को वे आज की प्रक्रिया में समेटते हैं।[५] आज की अस्पष्टजीवन स्थितियों

---

(१) विचार कविता की भूमिका - विचार कविता की अवधारणा - पृष्ठ - ५३
(२) वही। सीमेन्ट कांक्रीट कविता का खतरा पृष्ठ - ७०
(३) चन्द्रकान्त देवताले के १२-५-७६ के पत्र के आधार पर
(४) विचार कविता की भूमिका - --- पृष्ठ - ८१
(५) वातायन नवम्बर - १९६६ --- पृष्ठ - ४३

की अभिव्यक्ति तथा सामाजिक दायित्व का निर्वाह करते हुए आदर्शोन्मुख यथार्थ ही आज की कविता का लक्ष्य है। वह कुंठा और अनास्था की विरोधी है। वे नकली यथार्थ अथवा आयातित दर्शन को स्वीकार नहीं करते। इस संदर्भ में डॉ० पूनम दइया का कथन दृष्टव्य है[1] "गोपाल कृष्ण सराफ, हरीश मादानी, प्रमातेतान, होतीलाल भारद्वाज आदि कवि "आज की कविता" के अंक-१ व २ में संगृहीत हैं। "कोलाज कविता" का प्रयास भी इस काल में चला जिसमें अधूरे बेतरतीब वाक्य जिनसे न कोई अर्थ निकल सकता है तथा न वाक्य ही बन सकता है इस कविता का रचना विधान है। कोलाज कविता के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा गया कि, कविता की प्रक्रिया आज तालच्युत, निर्वासित मानस के "कोलाज" वृत्त में आती जा रही है : अधूरे काव्यों की कतरनें अंधस्थ उलजलूलियत और खण्डित फैंटेसी का अपूर्णत्व ही उसका वास्तव्य है। ऐसी कविताएँ कविता के स्वीकृत मूल्यों और पाठ - प्रक्रिया से भिन्न होती है"[2] राजा दुबे ने पोस्टर कविता" का प्रयास भी किया। राजकुमार कुंभज जैसे कवियों ने "कविता प्रदर्शनी" का प्रयोग भी किया है। वैज्ञानिक युग का प्रभाव कविता पर इतना पड़ा कि अब कम्प्यूटर कविता ने भी जन्म ले लिया है। आज जो सबसे स्तुत्य बात है वह है कि विदेशी माल का आयात बन्द हो गया है। स्वयं भारत में भी इन आन्दोलन के प्रति कोई दिलचस्पी न रह कर अब सभी कवि व आलोचक कविता की ही मांग कर रहे हैं। किसी आन्दोलन की नहीं। ज्यादातर आन्दोलन द्वितीय के चन्द्रमा की भांति उदय हुए थे जो अल्पावधि में ही विलीन हो गए। डॉ० जगदीश गुप्त समस्त साठोत्तरी काव्यान्दोलनों को "पैरासाइट" की संज्ञा देते हैं जो नई कविता

- -

(१) आज की कविता अंक-२

(२) विजप - - पृष्ठ- ११३

से ही पोषित है। उनका विचार है कि नई कविता साहित्य के क्षेत्र में विषैले वृक्षों का पोषण नहीं करेगी। 'नयी कविता अपनी अप्रतिहत प्राणशक्ति से उसे (पैरासाइट को) भी पल्लवित पुष्पित करने में निजी सार्थकता ही समझती रही है और आगे भी समझती रहेगी। हां विष - वृक्षों का पोषण वह अवश्य ही नहीं चाहेगी क्यों कि अभी उसने अपने विवेक को तिलांजलि नहीं दी है और उन्हें निर्बीज बना देने की शक्ति भी उसमें है ही।'[1]

साठोत्तरी कविता के प्रमुख काव्यान्दोलनों का अध्ययन करने के उपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि इसमें अधिकतर कवि अपना अस्तित्व स्थापित करने के लिए मैदान में उतरे। लगता है जैसे प्रत्येक को कोई नया सगूफा छोड़ने की धुन सवार हो गई हो। कविता पर विभिन्न नामों के छोटे-बड़े लेबिल इस एक दशक की काव्य-यात्रा में देखे जा सकते हैं। साठोत्तरी कविता के विभिन्न काव्यान्दोलनों के सम्बन्ध में डॉ० प्रेमशंकर का मत है कि 'रचना के सैकड़ों आन्दोलन या फिर रोज रोज उठने वाले नारे प्रकारान्तर से रचना की अपनी दुर्बलता का ही दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं, अन्यथा रचना में जब भीतरी ताकत होती है, तब उसे व्यर्थ के मुखौटों की जरूरत नहीं पड़ती।'[2] विभिन्न आन्दोलनों से ज्ञात होता है कि इनमें एक पक्ष अकवियों का है तथा दूसरा प्रतिबद्ध कवियों का। साठोत्तरी कविता के विभिन्न काव्यान्दोलनों की अल्पायु में मृत्यु का कारण ही यह रहा कि वे अतिवादी हो गए थे। चमत्कार के साथ-साथ जिनमें जमीन की पकड़ अधिक थी वे आन्दोलन चर्चित भी हुए। सभी आन्दोलनों के मूल में व्यवस्था विरोध, अस्वीकार तथा विद्रोह के स्वर हैं। इनकी मूल चेतना एक ही है।

---

(१) नयी कविता ८   पृष्ठ- २६७

(२) वीणा अगस्त, १९७२- आधुनिक रचना का संकट डॉ०प्रेमशंकर- पृष्ठ-२६

साठोत्तरी कविता: नये काव्य-शास्त्र की संभावना

नयी कविता के प्रवर्तक डॉ० जगदीश गुप्त ने 'बुद्धिरस' की बात कहकर काव्य-शास्त्र के अन्तर्गत एक नये 'रस' की संभावना को बल दिया। साठोत्तरी कवियों ने भी बार-बार इस बात को दोहराया कि उनकी कविताओं का मूल्यांकन प्राचीन काव्य-शास्त्रीय मानदण्डों के आधार पर न किया जाय। नये युग के साथ नये मानदण्ड गढ़ने की बात कवि तथा समीक्षक बार-बार करते रहे हैं। यही कारण है कि प्राचीन काव्य-शास्त्रीय कसौटी पर युवा कविता खरी नहीं उतरती। अत: इस कविता के लिए एक नए काव्य-शास्त्र की आवश्यकता बलवती हो जाती है।

i) कविता का स्वरूप और उसकी भूमिका::-

साठोत्तरी कवियों ने बार-बार 'कविता' की व्याख्या करनी चाही है। उनका सारा जोर इस बात पर है कि हम जो कविताएँ लिख रहे हैं, उनका स्वरूप और उनका उद्देश्य पिछली पीढ़ी की कविताओं से साफ अलगाव लिए हुए हैं। उनके लिए कविता मानसिक विलास की वस्तु नहीं है और न इसका उपयोग अपनी कुंठाओं को व्यक्त करने के लिए किया गया है। अकविता सम्प्रदाय के कवियों ने भी कविता को निजी मामला नहीं

माना है। यदि गंगा प्रसाद विमल के लिए कविता एक दूसरे तक पहुंचने के लिए एक पुल है [1] तो श्याम परमार उसे कवि के व्यक्तित्व, अनुभव और यंत्रणाओं की पहचान के रूप में देखते हैं---

गोया तुम्हारी कविता
कविता नहीं-- तुम्हारा नाम होती है
जात होती है या यंत्रणाओं में पहचान के लिए
तुम होते हो
तुम्हारी अहमियत होती है
कविता नहीं होती[2]

अकवि कविता के मिजाज से अधिक उसके अंदाज पर बल देते हैं। जाहिर है कि वे कविता के शिल्प पर अधिक जोर देते हैं [3] इसके विपरीत प्रतिबद्ध कवियों ने कविता के विचार पक्ष को महत्व दिया है। धूमिल का यह कथन कि एक सही कविता / पहले / एक सार्थक वक्तव्य होती है, इसी ओर संकेत करता है। धूमिल ने कविता को कटघरे में खड़े बेकसूर आदमी का हलफनामा[4] कहकर उसे जिस सच्चाई, ईमानदारी से जोड़ा है, वह भी कविता के वस्तु पक्ष से ही अधिक सम्बद्ध है। धूमिल के लिए कविता प्राय:

---

(१) --- कविता आदमी का निजी मामला नहीं
एक दूसरे तक पहुंचने के लिए एक पुल है
- - - - - - - - - - - - - - -
वक्त आ गया है
कि वही आदमी पुल बनाएगा
जो पुल पर चलते आदमी की हिफाजत कर सकेगा
--- निर्णय- पुल पर आदमी - पृष्ठ- १६७-६८

(२) कविताएँ : कविता के बाहर - पृष्ठ- २१

(३) कविता के आगे भी एक तासीर का मुझे
एहसास होता है
कविता को कविता से और भी आगे ले जाता है
उसका अंदाज
--- कविताएँ-- कविता के बाहर - श्याम परमार - पृष्ठ- १५

(४) कविता/ शब्दों की अदालत में/ मुजरिम के कटघरे में खड़े बेकसूर आदमी का/ हलफनामा है। -- संसद से सड़क तक - मुनासिब कार्यवाही - पृष्ठ-११

आतंक के बीच जन्मी हुई चीज है। जब वे कविता को घेराव में किसी बौखलाये हुए आदमी का संक्षिप्त एकालाप[1] कहते हैं तब जोर एकालाप पर उतना नहीं जितना घेराव में आदमी के बौखलाने पर। कविता को सन्निपात का पुल[2] कहना भी इसी से मिलती-जुलती बात है शिल्प पर यहाँ बल कतई नहीं है। अमृता भारती के अनुसार 'कविता केवल अभिव्यक्ति नहीं है, कवि की जिन्दगी है। लिखा अनलिखा सब उसके भीतर समाहित है।'[3] केदारनाथ सिंह ने नये काव्य-शास्त्र का हवाला देकर यह स्पष्ट करना चाहा है कि अब कविता सहजकर्म न रहकर बहुत कठिन और कौशलपूर्ण कर्म बन चुका है। उन्होंने 'वस्तु' के स्वाद को शिल्प के चातुर्य से संप्रेष्य बनाने की कठिनाई सामने रखी है।

अब
नये काव्यशास्त्र के अनुसार
मुँह में बचे हुए चावल के स्वाद को
कुछ अदृश्य कंकड़ियों के हस्तक्षेप से
बचाने का नाम है
कविता[4]

---

(१) संसद से सड़क तक - मुनासिब कार्यवाई - पृष्ठ- १०
(२) जिन्दा कविता / सन्निपात का पुल है
--- पहचान ३।४ कछुए की पीठ पर - रमेशचन्द्र शाह - पृष्ठ- २
(३) प्रक्रिया - --- पृष्ठ- २७
(४) ज्ञानोदय, दिसम्बर १९६८, पृष्ठ- २१ से उद्धृत ।

कविता जीवन से संपृक्त: :-

साठोत्तरी कवि कविता को अनन्त पुण्य का फल नहीं मानता। किसी अलौकिक या दैवीय देन के रूप में कविता को स्वीकारना उसे स्वीकार नहीं। वह कविता को उसी प्रकार जीवन का अंग मानता है जिस प्रकार सूरज, चन्द्रमा, हवा, और धूप जीवन से अलग नहीं है[1] रविनाथ मिश्र जैसे कुछ कवियों को छोड़ दिया जाय, जिनके लिए कविता उबकाई जैसी चीज है,[2] तो अधिकतर कवियों ने इसे गंभीर कर्म के रूप में लिया है। साठोत्तरी कवि कविता को नारा लगाने या चिड़िया पर रंग फेंकने जैसी बचकानी हरकत नहीं मानते ---

1- कविता नहीं है कोई नारा

----

(१) कविता कोई अलग क्रिया नहीं है
सूरज का चमकना, चन्द्रमा का बोझल
होना, हवा की चुप्पी
धूप का खिलना - ये
सब भी कोई अलग क्रियायें नहीं हैं। जीवन
जड़ता का ही एक पहलू है इन्हें
और मुझे एक ही तरह जिये जाना है
और यही सार मेरे शरीर से झरता हुआ
कविता बनकर सब ओर फैल जाता है

--- वीणा अगस्त १९६६, अंकविताक अंक - अनुराग - पृष्ठ- ४६० से तक।

(२) कविता मेरे भीतर एक ठुंसी हुई चीज है
जो उबकाई के साथ बदतमीज की तरह
बाहर आ जाती है

--- समीक्षा - मई १९७२ - पृष्ठ- १२ के आधार पर।

जिसे चुपचाप इस शहर की
सड़कों पर लिखकर घोषित कर दूं
कि 'क्रान्ति हो गयी'
न ही बचपना
कि किसी चिड़िया पर रंग फेंक कर
चिल्लाने लगूं
'अब यह मेरी है' [१]

२- तुम्हें पता है मेरी कविता चिल्लाकर नारे लगाना नहीं जानती
उसे, मैं इशारों की कुतिया नहीं बना सकता [२]

जहाँ तक कविता की भूमिकाका प्रश्न है युवा कवि इसकी सार्थकता के प्रति अधिक आश्वस्त नहीं हैं। अतुराज को लगता है कि कविता कोई अनिवार्य प्रश्न नहीं है [३] चन्द्रकान्त देवताले भी जानना चाहते हैं कि 'मैं कविताएँ फेंकता रहूँगा / अब तक / आखिर कब तक / अपनी हड्डियां सैलाब में धरता रहूँगा।' [४] इस प्रकार के अनिश्चय और संशय के बावजूद कवियों ने कविताएँ लिखी हैं कवितान्त की घोषणा के साथ - साथ कविता लिखते जाना कवियों की दोहरी मानसिकता को व्यक्त करता है इस संदर्भ में डॉ० नंदकिशोर नवल की यह टिप्पणी बिल्कुल

- -

(१) कुआनो नदी - पथराव - पृष्ठ- ८६

(२) कविताएँ कविता के बाहर - कविता से आगे - पृष्ठ- १३

(३) कविता कोई
अनिवार्य प्रश्न नहीं है
जो हम करें और
करते जाएँ
--- कविताएँ - १९६४ कविता - पृष्ठ- २२

(४) दीवारों पर खून से - कवितांत के अन्धेरे में - पृष्ठ- १२

सही है: 'कविता की भूमिका को लेकर इस पीढ़ी के कवियों ने अपनी कविताओं में काफी चिन्तन किया है और सभी प्राय: इसी निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि यह एक निरर्थक 'वस्तु' है। यह विरोधाभास है कि ऐसा महसूस करने वाले कवि भी कविता लिखकर ही अपनी सार्थकता प्रकाशित करते रहे हैं।[1] यह सच है कि कविता आज कोई बड़ा परिवर्तन नहीं ला सकती लेकिन परिवर्तन के अनुकूल माहौल तो बना ही सकती है। कुछ कवियों ने कविता द्वारा विरोध पक्ष की भूमिका निभाने की बात कही है---

अब मैं कवि नहीं रहा
एक काला झंडा हूं।
तिरपन करोड़ भौंहों के बीच मातम में
खड़ी है मेरी कविता[2]

गंगा प्रसाद विमल ने भी साठ के बाद की कविता की प्रमुख प्रवृत्ति विरोध मानी है[2]। वास्तव में केवल विरोध- अथवा विरोध कविता की एकांगी भूमिका प्रदर्शित करता है सही का समर्थन और गलत का विरोध यही कविता का दायित्व है जिन कवियों में यह चेतना है वे बहुत मूल्यवान और उपयोगी लिख सके हैं।

ii) <u>वस्तु और शिल्प : साठोत्तरी काव्य दृष्टि::-</u>

कविता के विषय-वस्तु-शिल्प को लेकर नयी कविता से पूर्व कवियों में कोई खास चेतना वैसी को नहीं मिलती। नयी कविता में भी विषय और वस्तु को एक साथ गड्ड-मड्ड कर दिया गया है।[3]

- -

(१) समीक्षा - फरवरी - अप्रैल - १९७६ - पृष्ठ- १६

(२) 'समकालीन कविता की बिलकुल नयी प्रवृत्ति विरोध की कविता है' --- प्रक्रिया - प्रक्रिया और कविता - पृष्ठ- १८

(३) तीसरा सप्तक - अज्ञेय - पृष्ठ- १६

इस संदर्भ में जहाँ तक भारतीय साहित्य चिन्तन परम्परा का प्रश्न है वहाँ तो शिल्प के ऊपर वस्तु की प्रमुखता मिलती है साहित्य में विषय-वस्तु पर बल देने का अर्थ है यथार्थ जगत के सत्य का पूर्ण गहरा ज्ञान, मूर्त और ठोस रूप से युग सत्य की पहचान ।'[1] वस्तु की आधुनिक अवधारणा विभाव को ही वस्तु मानने वाली भारतीय अवधारणा से मेल खाती है । 'वस्तु' और 'कथ्य' को कुछ विचारकों ने एक दूसरे से पृथक करके देखा है । राजेन्द्र प्रसाद सिंह का विचार है 'कथ्य की जो बुनावट (weaving) पूरी रचना में प्रकट होती है वही तह पर तह वस्तु (Content) होती है ।'[2] डॉ० नंदकुमार राय काव्य में कथ्य की अपेक्षा वस्तु पद को अधिक उपयुक्त मानते हैं ।[3] वास्तव में कथ्य और वस्तु में अभेद है ।

साठोत्तरी कविता के प्रमुख काव्यान्दोलन वस्तु को अधिक महत्व देते हैं । अकविता में मुख्यत: मूल्यों, नैतिक धारणाओं और संस्कारों के अस्वीकार की बात है जो कि 'वस्तु' के अन्तर्गत ही आती है । प्रतिबद्ध कवि भी शिल्प के प्रति उतने सचेत नहीं है जितने अपनी काव्य-वस्तु को नया समकालीन और प्रासंगिक बनाने के लिए लालायित हैं विचार कविता की अवधारणा शिल्पपरक नहीं विषय-वस्तुपरक है ।' विचार कविता के पक्षधरों का विचार है कि काव्यानुभव में भावना से अधिक योग विचार का है । यह विचार निश्चय ही काव्य-वस्तु का एक अंग है । डॉ० महेन्द्र भटनागर कविता में शिल्प के अस्तित्व को तो स्वीकार करते हैं परन्तु गौड़ रूप में ही । 'रचना शैली का अपना महत्व है पर प्रधानतत्व कथ्य ही है ।

---

(१) १-३-७४ के पत्र के आधार पर

(२) ११-४-७४ के पत्र के आधार पर

(३) विचार कविता की भूमिका -- राजीव सक्सेना - पृष्ठ - ५३

—— माना कि रचना शैली की विविधता एवं नवीनता तथा नये - नये प्रयोगों के महत्व को कम नहीं किया जा सकता ; पर कवि कर्म का वह अर्थ है, इति नहीं ।"[1] लेकिन समझदार कवियों और समीक्षकों को इस बात का अहसास है कि कविता में कथ्य और कलात्मकता का संतुलन नहीं बिगड़ना चाहिए।[2] इस प्रकार कविता न तो शब्दों का कोरा विधान है और न मोहक ढंग से अनुभवों की प्रस्तुति ही कविता कही जा सकती है । यह अवश्य है कि अनुभूति की मौलिकता सर्वाधिक आवश्यक है[3] मौलिक अनुभूतियों को उपलब्ध करने के लिए किसी कल्पना विलास या निर्वासन की आवश्यकता नहीं है देश राजनीति व्यवस्था और समाज आदि का एक लम्बा क्षेत्र खुला पड़ा है, जहाँ से अनुभव प्राप्त किए जा सकते हैं । युवा कवि मौजूदा मानवीय स्थिति की व्याख्या और विश्लेषण से गुजरकर कविता को पाना चाहता है । उसने सार्त्र के इस कथन को काफी हद तक अपना समर्थन दिया है कि जो कविता आज की त्रासदी, विडम्बना पराजय क्रोध और निरर्थकता से कतराती है वह आज की कविता नहीं है, और जो आज की कविता नहीं, वह कविता ही नहीं ।[4]

- -

(१) प्रक्रिया सं० व राजेन्द्र प्रसाद सिंह - रचना प्रक्रिया: तथ्य - पृष्ठ - १७७

(२) विचार कविता की भूमिका —— अनुराग - पृष्ठ - ५७

(३) "अनुभूति की मौलिकता यानी कथ्य की सचाई एक अहम प्रश्न है, जिससे भाग कर शब्दों के पत्थर एकत्र कर लेने मात्र से कविता के महल की निर्मिति नहीं हो सकती ।"

—— लहर जुलाई १९७० - युवा कविता: दो प्रश्न चिन्ह - रामदेव आचार्य —— पृष्ठ - ३४

(४) आवेग - ६, १९७२ ज्यापाल सात्रे - पृष्ठ - ११० से उद्धृत ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि युवा कवि कविता में वस्तु पक्ष पर जोर देते हुए भी वस्तु और शिल्प के संतुलन का हामी है। यह सही और संतुलित दृष्टिकोण है क्यों कि वस्तु और रूप का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है।[१] वस्तु जितनी ही गहरी और संश्लिष्ट होगी रूप उतना ही समृद्ध और समर्थ होगा।

निष्कर्ष:-

स्वतंत्रता के पच्चीस वर्षों के इतिहास में पहला लगभग डेढ़ दशक सम्मोहन का काल रहा तथा उसके पश्चात मोहभंग का काल। स्वतंत्रता के मूल में जो आशा और विश्वास भारतीयों ने संजो रखे थे जब वे पूरे नहीं हुए तो उनमें एक प्रकार की निराशा आक्रोश तथा विद्रोह की भावना जाग्रत हुई। भारत को सामाजिक राजनीतिक तथा आर्थिक सभी क्षेत्रों में सफलता न मिली। सन् ६० के पश्चात भारत वर्ष में परिस्थितियाँ इतनी भयावह हो उठीं थी कि उसने मानव के मूल्यों को झकझोर दिया। मार्क्सवाद, अस्तित्ववादी चिन्तन तथा आधुनिकता बोध ने भी हमारी परम्परागत मान्यताओं तथा नैतिकताओं के समक्ष प्रश्न चिन्ह लगा दिया। आदमी में इन मान्यताओं के प्रति अस्वीकार का भाव जाग्रत हुआ। देश के इस बदले हुए वातावरण ने एक नई काव्य संवेदना को जन्म दिया। सन् ६० के पश्चात् जो परम्परामुक्त तथा एक खास किस्म की कविता सामने आई उसे ही युवा कविता अथवा साठोत्तरी कविता के नाम से सम्बोधित किया जाता है। यह कविता वस्तु और वस्तु शिल्प में अपनी पूर्ववर्ती कविता से भिन्नता रखती है।

सन् ६० के पश्चात् हिन्दी कविता में विभिन्न आन्दोलनों की बाढ़ आई। इन सभी आन्दोलनों के मूल में अस्वीकार तथा विद्रोह है।

---

(१) "वस्तु तत्व और रूपतत्व कुछ इतना अन्तरावलम्बित है कि एक विषय के लिये एक विशिष्ट रूप ही उपयुक्त होता है।"
--- आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प -- कैलाश वाजपेयी - पृष्ठ- १६

अत: इनकी मूल चेतना में भी एक ही ओर संकेत करती है। साठोत्तरी कवियों ने अपनी कविताओं के मूल्यांकन के लिए नये काव्य प्रतिमानों की स्थापना पर जोर दिया है। सभी साठोत्तरी कवि 'वस्तु' और 'शिल्प' के समन्वय के हामी हैं। कुल मिलाकर साठोत्तरी कविता अपने परिवेश की उपज है उसकी जड़े जीवन में बहुत गहरे [illegible] तक बैठी हुई हैं। यह कविता 'वस्तु' और 'शिल्प' के स्तर पर नवीनता का दावा प्रस्तुत करती है।